दादा धर्माधिकारी

क्रांतिवादी नरुणों से

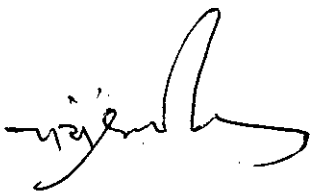

क्रांतिवादी तरुणों से

दादा धर्माधिकारी

अनुवाद
ति० न० आत्रेय

ग्रामभावना प्रकाशन
पट्टी कल्याणा

विषय-सूची

तारुण्य के लक्षण १
तरुणों का स्वाध्याय ११
चार समस्याएँ २४
जड़-मूल से क्रांति चाहिए ३४
क्रांति की नयी प्रक्रिया ५३
उपसंहार ७०

□

प्रथम संस्करण—सितंबर 1977 □ मूल्य दो रुपये
प्रकाशक-मंत्री, ग्रामभावना प्रकाशन, पट्टी कल्याणा, करनाल (हरियाणा)
मुद्रक : विचित्र प्रिंटिंग कन्सल्टेंट्स, दिल्ली

प्रास्ताविक

मेरे नाम से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें से बहुत-सी मेरे भाषणों के संपादित संस्करण हैं। मेरा यह सद्‌भाग्य रहा है कि मुझे संपादक और अनुवादक भी मुझसे कहीं अधिक अधिकारी व्यक्ति मिले। उन्होंने बड़े परिश्रम और विवेकपूर्वक संपादन तथा भाषान्तर करने की कृपा की है। तिस पर भी उन सारी पुस्तकों के हर वाक्य के लिए मैं श्रेय या अपश्रेय का अधिकारी नहीं हूं। फिर भी कुछ पुस्तकें मैंने स्वयं दोहराकर संशोधित की हैं। इस काम के लिए मुझे अरुचि है। उसे मैं सज़ा ही मानता हूं। यह बौद्धिक प्रमाद और आलस्य का द्योतक है। इस अपराध का मैं दोषी हूं; वस्तुस्थिति को नकारना तो और भी अशोभनीय होगा।

यह पुस्तिका उन पुस्तिकाओं में से है, जिन्हें मैंने स्वयं संशोधित किया है। ये भाषण मैंने कई वर्ष पहले युवा-युवतियों के एक शिविर में किये थे जो महाराष्ट्र में महाबलेश्वर के निकट एक गांव में हुआ था। उन्हें महाराष्ट्र के मित्रों ने संशोधित रूप में प्रकाशित किया। मूल मराठी पुस्तिका मैंने पढ़ी नहीं थी। परन्तु उसका यह हिन्दी अनुवाद मैंने ध्यान से पढ़ा है। मेरे मित्र श्री ति० न० आत्रेय कन्नड़ भाषीय हैं। परन्तु यह भाषान्तर उन्होंने परिमार्जित हिन्दी में किया है। मेरे लिए यह बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञता का विषय है।

जे० पी० ने सम्पूर्ण क्रान्ति का पुण्याहवाचन किया है। उनके कुछ आयामों को विशद करने की चेष्टा इन भाषणों में है। विशेषकर तरुणाई की भूमिका का विवेचन इन भाषणों में है। उत्साह, ऊर्जा और स्फूर्ति तो तरुणाई के अंगभूत लक्ष्य हैं ही। लेकिन क्रान्ति के लिए क्रान्ति की उत्कट आकांक्षा, आदर्शनिष्ठा और असीम मानवप्रेम की भी नितान्त आवश्यकता होती है। निरन्तर सावधानता और विवेक से वीरवृत्ति सम्पन्न हो तो क्रान्ति के लिए पराक्रम करने में विशेष रुचि और आनन्द की अनुभूति होती है। इन भाषणों से यदि तरुणाई का यत्‌किंचित् भी उद्‌बोधन हुआ तो मैं धन्यता अनुभव करूंगा।

१०-८-७७

—दादा धर्माधिकारी

प्रकाशकीय

राष्ट्र का तरुण राष्ट्र की शक्ति है। तारुण्य जागता है तभी राष्ट्र करवट लेता है। जागृत शक्ति सही दिशा में कार्य कर सके इसके लिए समुचित दिशाबोध कराने का काम, कुछ हद तक, राष्ट्र के परिनिष्ठित बुद्धिसंपन्न समदर्शी बुजुर्गों का है। इस दृष्टि से श्रद्धेय दादा धर्माधिकारीजी की यह पुस्तक 'क्रांतिवादी तरुणों से' प्रकाशित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है।

तारुण्य का अपव्यय जिस प्रकार तुच्छ राजनैतिक हेतुओं में किया जाता है, उसी प्रकार संकीर्ण धर्मशाही और पराङ्मुखी बुजुर्गशाही के प्रभाव में तारुण्य का अप्रतिम बल कुंठित होकर रह जाता है। तरुण को आज यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि उसे किसी भी प्रभाव में आने से बचना है, अपनी आंख और अपना दिमाग खुला रखकर जीवन-मूल्य की स्थापना के लिए अपनी निष्कलुष अंतःप्रेरणा के अनुसार, समस्त उपाधियों से मुक्त होकर, नवसमाज के निर्माण के काम में जुट जाना है।

इसी दिशा की ओर इंगित करनेवाली इस पुस्तक में न कहीं कोई उपदेश है, न किसी प्रकार की वर्जना है; केवल है मुक्त चित्त का आवाहन, व्यापक और तेजस्वी बुद्धि की प्रेरणा और प्रत्यक्ष जीवन की समस्याओं के आधार पर सहज बुद्धिगम्य विचारशैली में तरुणवर्ग के चरणों में एक नम्र निवेदन।

आकार में छोटी होते हुए भी यह पुस्तक जागे हुए तरुण के जीवन-पथ को आलोकित करनेवाली मशाल का काम देगी, इसमें शक नहीं।

इस पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति देकर पूज्य दादा ने हमें गौरवान्वित किया है। हम इसके लिए दादा के आभारी हैं। आशा है समाज इस पुस्तक का पूरा-पूरा लाभ उठायेगा।

११ सितंबर १९७७ —ओमप्रकाश त्रिखा

एक

○

तारुण्य के लक्षण

० ० ०

तारुण्य ! तरुणाई ! तरुणाई के समान पवित्र वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। तरुणाई हमारे यहाँ भगवान् का गुण मानी गयी है। भगवान् की जो भी तस्वीरें हमारे यहाँ हैं, उनमें एक महादेव को छोड़ दें तो, किसी के मूँछें भी नहीं हैं। भगवान् सदा तरुण ही रहता है। बूढ़ा होता ही नहीं। कभी मरता नहीं। तरुणो, तुम्हारा शरीर भले जीर्ण हो जाय पर मन को जीर्ण न होने दो।

किसी का भी विचार माना मत करो। किसी विभूति या महापुरुष का विचार स्वीकार मत करो। किसी भी संगठन का विचार मान्य न करो। विचार भले ही गांधीजी का हो, विनोबाजी का हो, सर्वोदय का हो या और कोई हो उसे अंगीकार मत करो। विचार तुम्हारे अपने होने चाहिए, तुम्हारे अंतःकरण से प्रेरणा आनी चाहिए। और तुम्हारी बुद्धि सदा विचार करने के लिए खुली रहनी चाहिए। तटस्थ, विनम्र बुद्धि। ऐसी बुद्धि, जिसमें किसी प्रकार का आग्रह न हो। यहाँ किसीने तुम्हें अहिंसा का पाठ पढ़ाया होगा। कई उपदेश दिये होंगे। तो वह भूल जाओ। किसी भी तत्त्वज्ञान से हमें कोई मतलब नहीं, किसी भी सिद्धान्त से हम बँधे नहीं हैं, अहिंसा से भी नहीं।

किसके लिए जीयें

हम एक ही बात जानते हैं—जीवित रहना, जीना। यही एक मात्र उद्देश्य है, यही एक आदर्श है, यही एक ध्येय है; दूसरा कोई हेतु नहीं, कोई लक्ष्य नहीं। किसके लिए जीयें? जीने के लिए जीना है। तुम्हारे जीवन का प्रयोजन क्या है? मुझे मालूम नहीं। मैं थोड़े ही गया था भगवान् से दरखास्त करने कि मुझे जन्म दो? मैं जनमा हूँ कि जीना मेरा अधिकार है। और जीना कैसे सिद्ध हो, यह चरितार्थ कैसे हो, यही एक धुन है।

आज हम जिस संसार में जी रहे हैं वह मनुष्य के जीने लायक नहीं है। यह ऐसा नहीं है कि जिसमें मनुष्य को जीना चाहिए। हम पिछली पीढ़ी के लोग जीये, क्योंकि हममें जीवन नहीं था, जीवंतता नहीं थी, पुरुषार्थ की कमी थी। अब एक ही आकांक्षा है कि जिस संसार में मैं मरूंगा उस संसार में तुम्हें जीना न पड़े, उसमें तुम न जीओ। इसलिए अब तुम निर्णय करो, प्रतिज्ञा करो कि ऐसे संसार में हम नहीं जीयेंगे।

यहाँ इन्सान बिकता है

संसार क्या है? एक शहर में गाँव का एक आदमी गया। उसके पास उतने ही पैसे थे कि वह अपने बेटे का और अपना बस टिकट खरीद सके। समझ लो वापसी टिकट भर का पैसा था। शहर पहुँचते ही उसका बच्चा बीमार हो गया। वह डाक्टर के पास गया और बोला—'डाक्टर साहब, मेरा बच्चा अचानक बीमार हो गया।' डाक्टर ने जाँच की और कहा—'इंजक्शन की जरूरत है।'

'ठीक है', वह बोला, 'दीजिए इंजक्शन'।

'बीस रुपये लगेंगे।'

'पैसा तो लेकर आया नहीं हूँ। यह मेरे लिए पराया शहर है।'

'भले आदमी, मैं दे तो देता इंजक्शन, लेकिन मैं भी खरीद कर लाया हूँ।' डाक्टर ने कहा।

'तो क्या इस शहर में और किसी के पास नहीं है ?'

'है', डाक्टर ने एक अमीर आदमी का नाम बताया और एक दुकानदार का भी पता बताया। वह शख्स पहले दुकानदार के पास गया। दुकानदार ने कहा : 'यह दुकान है। दुकान में जो चीजें होती हैं वे बिक्री के लिए होती हैं, यूँ देने के लिए नहीं।'

फिर वह उस अमीर के पास गया और बोला—'सुना कि आपके पास वह इंजक्शन है।'

'है'—उसने कहा।

'मेरा बेटा बीमार है, मुझे देंगे ?'

'यह नहीं हो सकता', धनी ने कहा, 'मैं खरीद कर लाया हूँ।' उसके लिए मैंने पैसे खरचे हैं। तुम्हें कैसे दे दूँ ?'

'क्या आपके घर में कोई बीमार है ?'

'जी नहीं, हमारे घर में कोई बीमार नहीं है।'

'कैसा अजीब शहर है यह ! जिसे बीमारी है उसे दवा नहीं और जहाँ दवा है, वहाँ बीमारी नहीं।"

ऐसा अजीब है यह आजका संसार ! जहाँ भूख है वहाँ अन्न नहीं और जहाँ अन्न का ढेर है वहाँ भूख जगाने के लिए दवा लेनी पड़ती है। जो ठंड से ठिठुर रहा है उसके पास कपड़े नहीं हैं और जिनके पास कपड़े ही कपड़े हैं उन्हें कब कौन-सा पहना जाय इसके लिए अवसर खोजने पड़ते हैं।

तरुणाई किसे कहते हैं

तरुण छात्रो, तरुणो, तुम पढ़ाई कुछ भी करो, चाहे न भी

करो, किसी वर्ग में हाजिर रहो या न रहो, कोई पुस्तक पढ़ो चाहे न पढ़ो, कोई परीक्षा दो या न दो, इतना ही समझ लो कि जिस संसार में खरीदने से चीजें मिलती हैं, जरूरतमंद को नहीं मिलतीं, वह भगवान् का सिरजा हुआ संसार नहीं है, शैतान का बनाया संसार है। इस संसार को बदलने की छटपटाहट अगर तुममें है तो तुम तरुण हो। यह तड़पन न हो तो तुम मुझसे भी बूढ़े हो। यह एक छटपटाहट तुममें हो तो तुम पढ़ोगे, अध्ययन करोगे कि आज की यह स्थिति कैसे बदली जाय। यह सोचने लगोगे कि वह कौन-सा उपाय होगा जिससे यह स्थिति बदली जा सकेगी। एक पतंग बनानी होती है, खेलने के लिए एक गेंद बनानी होती है, या एक बल्ले की जरूरत पड़ती है तो तुम उसे पाने के लिए जमीन-आसमान एक कर देते हो, दिन की रात और रात का दिन कर देते हो, प्रयत्न की पराकाष्ठा कर देते हो। जानकारी प्राप्त करते हो, तब बनाते हो। अब करना यह है कि इस देश में कोई भूखा न रहे, चीजें जरूरतमंद को मिलें। जहाँ गरज हो वहाँ वस्तु रहे। बीमार को दवा मिलनी चाहिए। अन्न पाने के लिए भूख ही एक मात्र योग्यता काफी है, दूसरी कोई योग्यता आवश्यक नहीं है, न होनी चाहिए। दवा के लिए यही एक पात्रता पर्याप्त है कि बीमार है; दूसरी पात्रता क्यों चाहिए ? जो बीमार है उसे दवा मिलनी चाहिए। यह भूखा है, इसे अन्न मिलना चाहिए। यह ठंड से ठिठुर रहा है, इसे कपड़ा मिलना चाहिए। उसके लिए किसी और योग्यता की जरूरत नहीं है, कोई शर्त नहीं है। ऐसा संसार बनाने की उत्कंठा होनी चाहिए। यही तरुणाई है।

मैंने तरुणाई का पहला लक्षण तुम्हें बताया।

अब अधिक महत्त्व का प्रश्न यह है कि यह संसार बदले

कैसे ?

पूंजीवादी व्यवस्था

यह पृथिवी मनुष्य के आकार की बननी चाहिए। मनुष्य के जीने योग्य वह कब होगी ? पहली बात, खरीदने वाले को चीजें नहीं मिलनी चाहिए। जिस व्यवस्था में खरीदने वाले को चीजें मिलती हैं उस व्यवस्था का नाम है पूंजीवाद। विद्या खरीदी जा सकती है, मोक्ष खरीदा जा सकता है, भगवान् के दर्शन भी खरीदने वाले को होते हैं। भगवान् भी खरीदने वाले को मिलता है। मनुष्य बिकता है, मनुष्य का गुण बिकता है। जहाँ मनुष्य बिकता है वहाँ राज्य भी बिकता है। वहाँ मत (वोट) भी बिकता है। इसलिए वस्तु खरीदने वाले को नहीं मिलनी चाहिए। खरीदने वाले की हुकूमत, खरीदने वाले को सत्ता खत्म होनी चाहिए। यह पहली बात है। कलम नंबर एक।

तिजोरी के बजाय तलवार नहीं

दूसरी बात, तिजोरी की जगह तलवार नहीं आनी चाहिए। आज जिसके पास पैसा है उसे चीज मिलती है। कल ऐसा न हो कि जिसके पास डंडा है उसे चीजें मिलने लगें। उसे चीजें मिलने लगें तो गरजमंद को फिर भी कुछ नहीं मिलेगा। कल्पना करो कि वह जो बीमार बच्चे का बाप था वह पहलवान होता, तगड़ा होता और जोर जबरदस्ती कर सकता होता और उस अमीर से यह कहा होता कि 'भैयाजी, यह 'इंजक्शन सीधे तरीके से दे दो तो ठीक होगा, वरना सोच लो, मेरे हाथ में डंडा है।' तो उसका नतीजा क्या होता? जिसके हाथ में लाठी होगी उसे चीज मिलेगी। जिसे ज़रूरत है उसे नहीं मिलेगी। तिजोरी का पूंजीवाद गया और उसकी जगह तलवार का डंडावाद आया,

तो यह कोई क्रांति नहीं है। इस बात का ध्यान रहे कि थैली की जगह लाठी न आने पाये। आज थैली का राज है, साहूकार का राज्य है। उसके बदले यदि डंडा आया तो किसान और मजदूर राजा नहीं बनने वाला है। इसलिए क्रांति का दूसरा संकल्प यह है कि संसार में हथियार की सत्ता नहीं चलेगी। औजार की शान कायम होगी। क्योंकि क्रांति आखिर हथियारों से हुई तो वह सिपाहियों की क्रांति होगी। लेकिन क्रांति होनी चाहिए नागरिकों की।

नागरिकों की क्रान्ति का अर्थ क्या है? हथौड़े की और हंसिये की क्रांति; कुदाल और कुल्हाड़ी की क्रांति; चरखा और करघे की क्रांति। इसकी एक ही शर्त है और वह यह कि औजारों को हथियारों की शरण जाने की नौबत नहीं आनी चाहिए। औजार यदि हथियारों की शरण जाते हैं तो प्रतिष्ठा हथियारों की होगी, औजारों की नहीं। औजारों की प्रतिष्ठा होनी है तो औजारों से ही क्रांति होनी चाहिए। इसीलिए हम लोग श्रमशिविर चलाते हैं, सेना-शिविर नहीं। और इनमें हथियारों की तालीम नहीं दी जाती, उत्पादक श्रम का शिक्षण दिया जाता है। क्यों? इसलिए कि हम प्रतिष्ठा उत्पादक श्रम की चाहते हैं। उत्पादक परिश्रम की प्रतिष्ठा किसान मजदूरों को ही प्रतिष्ठा है। माओ की क्रांति देखकर हमें ताज्जुब होता है; मुझे भी होता है। संसार के इतिहास में किसानों की पहली क्रांति माओ की हुई। लेकिन माओ क्रांति से एक कदम पीछे रह गया। क्यों? इसलिए कि उसका किसान जवान बन गया, सैनिक बन गया। जवान बनने पर किसान किसान नहीं रह जाता। जिस दिन किसान-क्रांति जवानों की क्रांति हुई, उस दिन वह किसानों की नहीं रही। यह मैं अहिंसा का तत्त्वज्ञान नहीं

बतला रहा हूँ। यह अहिंसा का सिद्धान्त नहीं है। मूल में संकल्प ही यह है कि क्रांति के बाद औजार रहेंगे, हथियार नहीं रहेंगे। इसलिए क्रांति करते समय भी इसका खयाल रखना होगा कि हथियारों की प्रतिष्ठा, हथियारों की इज्जत समाज में बढ़ने न पाये। हथियारों के आज्ञांकित बनकर नागरिकों को न रहना पड़े।

मालिक कौन, मजदूर कौन

हमने देखा कि तिजोरी की सत्ता नहीं होनी चाहिए। चीजें खरीदनेवाले को नहीं मिलनी चाहिए। आज हम मजदूर किसे कहते हैं? मजदूर वह जो अपना श्रम बेचता है। दूसरे का श्रम जो खरीदता है वह मालिक। मजदूर क्या कहता है? कम से कम काम के लिए ज्यादा से ज्यादा दाम मिलना चाहिए। मालिक क्या कहता है? कम से कम दाम में ज्यादा से ज्यादा काम होना चाहिए। दोनों की चारित्र्यहानि हुई है। इसमें न कोई नीति का सवाल है, न अध्यात्म ही का प्रश्न है। जो काम बेचता है वह कामचोर होता है, जो दाम बेचता है वह दाम-चोर होता है। दोनों की मनुष्यता का ह्रास हो रहा है। यदि ऐसा लगता हो कि मनुष्यता फिर विकसित हो, बढ़े, तो उसे अपना श्रम बेचना नहीं चाहिए यानी उसे श्रम बेचने की मजबूरी ही न रहे और दूसरे को श्रम खरीदना नहीं चाहिए यानी ऐसी स्थिति ही नहीं रहनी चाहिए कि कोई श्रम खरीद सके।

दूसरी चीज यह कि औजारों को हथियारों की शरण नहीं खोजनी चाहिए। क्रांति किसान-मजदूरों की होनी चाहिए। लेकिन किसान-मजदूर शस्त्रधारी बनें तो? तो क्रांति दूषित हो जायगी, क्रांति खंडित हो जायगी, क्रांति का हेतु ही नष्ट हो जायगा। इसलिए यह दूसरी बात।

तीसरी बात, नागरिक और नागरिक के बीच राज्य की, शासन की दखलंदाजी कम-से-कम रहनी चाहिए। राज्य की पहचान तीन संस्थाओं से होती है—पुलिस, अदालत और जेल। ये राज्य की प्रतीकात्मक संस्थाएँ हैं। राज्य की दखलंदाजी को पहचानें कैसे ? किस पर से पहचानें कि राज्य समाज में घर कर रहा है ? तो इन तीनों में से कोई भी एक संस्था गद्दी पर बैठती है तो समझ लो समाज के भीतर राज्य घुस आया है।

संसार भर में कोई मनुष्य, कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं चाहेगा कि इन तीन संस्थाओं का उपयोग करने की उस पर नौबत आये। किसी भी इज्जतदार आदमी से पूछो कि आपके घर में पुलिस का आना आपको पसंद है ? क्या आपका मन करता है कि आपको अदालत में जाने का अवसर प्राप्त हो ? वह कहेगा—'भगवान् करे ऐसा कभी न हो।'

जयपुर के विद्यार्थियों ने मोर्चा निकाला था कि हमारे यहाँ हाईकोर्ट हो। मैंने पूछा कि 'क्यों भाई, कल को हाईकोर्ट यहाँ आ जाय तो तुम यह पसंद करोगे कि उसमें पहला मुकदमा तुम पर चले ? और वह मुकदमा तुम्हारे और तुम्हारे भाई के बीच हो ? या तुम्हारे या तुम्हारे पिताजी का हो ? तो वह बोला, 'जी नहीं। हम अपने घर में अदालत का दखल नहीं चाहते।'

'तो फिर, घर में जो नहीं चाहिए वह शहर में क्यों चाहिए ?'

मैं इंदौर गया था। वहाँ तो चमत्कार ही हुआ। वहाँ के लोगों ने मुझे जेल दिखायी और बोले—'दो हजार कैदी इस जेल में रह सकते हैं। इतनी बड़ी जेल हमारे शहर में है यह हमारे लिए गौरव की बात है।'

मैंने कहा कि 'अब कमी एक ही बात की है और वह यह

कि आप उसमें नहीं हैं। आप उसके भीतर बिराजते होते तो उसकी शोभा बढ़ जाती।'

हमारे एक सर्वोदयी मित्र हैं। मैं एक बार उनके गाँव गया था। तब वे बोले, 'अब आप आये ही हैं तो हमारे गाँव के अस्पताल का उद्घाटन कीजिए।'

मैंने कहा—'मैं तो बीमार नहीं हूँ।'

'नहीं, लेकिन आप आशीर्वाद दीजिए।'

'ठीक है, आशीर्वाद देता हूँ'—कह कर मैंने यही आशीर्वाद दिया कि 'आपका यह अस्पताल सदा खाली रहे।' और क्या आशीर्वाद देता ?

स्मशान गाँव के लिए आवश्यक है, लेकिन आशीर्वाद क्या हो ? यही तो कि वहाँ जाने की नौबत किसी पर न आये ? अस्पताल आवश्यक संस्था है, लेकिन आशीर्वाद यही होगा कि किसी को वहाँ जाना न पड़े। जेल, अदालत, पुलिस संस्थाएँ भी समाज में जरूरी होंगी, लेकिन दवा की तरह उनका भी उपयोग करने का मौका किसी पर न आये। इसलिए राज्य संस्था को क्षीण होना चाहिए, राजनीति क्षीण होनी चाहिए और लोकनीति बढ़नी चाहिए।

लोकनीति यानी लोगों की राजनीति। राजनीति का अर्थ है लोकजीवन में राज्य का प्रवेश; लोकनीति का अर्थ है राज्य में लोकजीवन का प्रवेश। लोकमत का राज्यसंस्था में प्रवेश का नाम है लोकनीति; राज्यसत्ता का लोकमत में प्रवेश का नाम है राजनीति। विद्यार्थी पूछते हैं—'हम राजनीति में पड़ें या नहीं ?' अवश्य पड़ो। खुलकर पड़ो। साँस ले रहे हो तो राजनीति में अवश्य पड़ो, राजनीति में भाग लो। लेकिन राजनैतिक लोगों से दूर रहो। मंदिर में पुरोहित घुसता है तो भगवान् खिड़की से

भाग जाता है। ये 'बिचौलिये' आये कि भगवान् से भक्त दूर पड़ जाता है। यह सब जानते हैं। मार्टिन लूथर से लेकर ज्योतिबा फुले तक सभी ने माना है कि भगवान् और भक्त के बीच कोई मध्यस्थ न रहे। 'मिडिल मैन' नहीं चाहिए। यही कारण है कि ब्राह्मणवाद के खिलाफ, पुरोहितशाही के खिलाफ विद्रोह किया गया। जरूरी ही था वह।

ग्रामस्वराज्य की व्यवस्था

उत्पादक और उपभोक्ता के बीच, प्रोड्यूसर और कन्ज्यूमर के बीच 'मिडिल मैन' नहीं चाहिए, दलाल नहीं चाहिए, मध्यस्थ नहीं चाहिए—यह क्रांतिकारियों ने माना है। बाजार दलालों की संस्था है। दुकान दलालों की संस्था है। जूता बनानेवाले और जूता पहननेवाले का आज कोई संबंध नहीं रहा है। ये दोनों ही आज अनामिक हो गये हैं। रोटी बनानेवाली माँ और रोटी खानेवाला बेटा—दोनों का प्रत्यक्ष संबंध है, लेकिन होटल में रोटी बनानेवाली बहन या भाई और होटल में खानेवाले व्यक्तियों का एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है। इसलिए उत्पादन और वितरण ऐसा होना चाहिए कि जिसमें मनुष्य का प्रत्यक्ष संबंध हो। यही ग्रामस्वराज्य है। वस्तु तैयार करनेवाले और वस्तु का उपयोग करनेवाले एक-दूसरे को जानते हैं, एक-दूसरे को पहचानते हैं। एक-दूसरे के व्यवहार में जिनकी आस्था है ऐसों का उत्पादन और वितरण ही ग्रामस्वराज्य की व्यवस्था है।

एक शहर है और एक गाँव है। एक ग्रामीण संस्कृति है और एक शहर की संस्कृति है। ग्रामीण संस्कृति का अर्थ है मनुष्य-मनुष्य के प्रत्यक्ष संबंध की संस्कृति। आज के गाँव कोई गाँव नहीं हैं। इनके बारे में डा० अंबेडकर ने कहा था—'सिक्स ऑफ़ लोकलिज्म,' ये क्षुद्र क्षेत्रवाद के डबरे हैं। ये डबरे गाँव

नहीं है। वहाँ गाँव की कला भी नहीं है। आज के छोटे-छोटे गाँव भी जातिस्थान हैं। और इसी जातिस्थान की कोख से पाकिस्तान का जन्म हुआ। इसलिए गाँव का स्वरूप बदलना चाहिए। मनुष्यों का एक-दूसरे के साथ हार्दिकतापूर्ण प्रत्यक्ष संबंध ग्रामीण संस्कृति है। इसमें सत्ता के दखल का कोई काम नहीं है। इसमें जिस दिन सत्ता का प्रवेश होगा उस दिन क्रांति भटके बिना नहीं रहेगी, क्रांति की छीछालेदर हुए बिना नहीं रहेगी। इसलिए ये तीन संस्थाएँ—एक तिजोरी की सत्ता जो मनुष्य को खरीदती है, दूसरी तलवार की सत्ता जो मनुष्य पर जुल्म करती है, और तीसरी सत्ता कुर्सी की, गद्दी की, राजसत्ता की जो मनुष्य पर शासन करती है—खत्म हों, और मनुष्यता का विकास हो, यह क्रांति है। इस दृष्टि से तरुणों को विचार करना चाहिए। यह विचार ही तारुण्य है, तरुणाई है।

दो

○

तरुणों का स्वाध्याय

० ० ०

तरुणों को विचार करना चाहिए। इसके लिए ऐसे शिविर होते हैं। स्वाध्याय, श्रम और सेवा—ये तीन इन शिविरों के हेतु बताये गये हैं। प्रश्न यह है कि स्वाध्याय किसका हो। प्राचीन काल में ब्राह्मणों को स्वाध्याय करना होता था। वेदों में एक आदेश है, विधान है—'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः,' यानी रोज़

कुछ न कुछ स्वाध्याय करना चाहिए। रोज कुछ न कुछ स्वाध्याय तो करें, पर किसलिए करें ? उसका प्रयोजन क्या है ? व्यर्थ ही स्वाध्याय करें क्या ? कोई ज्ञान प्राप्त करना है तो स्वाध्याय किया जाय। पर वह ज्ञान किसलिए चाहिए ?

आत्मज्ञान के सिवा बाकी सब प्रकार के ज्ञान के लिए प्रयोजन चाहिए, हेतु चाहिए। वरना किसलिए ? आत्मज्ञान के लिए हेतु आवश्यक नहीं है, क्यों कि आत्मज्ञान का स्वरूप ही भिन्न है। वह स्वरूप क्या है इसकी चर्चा यहाँ नहीं करनी है। और वह मैं जानता भी नहीं हूँ। लेकिन अन्य कोई भी ज्ञान प्राप्त करना है तो उसके लिए कोई प्रयोजन होना चाहिए।

आज सारे संसार में एक उत्कंठा है, एक छटपटाहट है और जानने की इच्छा है। मन में तड़प हो, जानने की तीव्र इच्छा हो तो उत्कंठा पैदा होती है। उत्कंठा में प्रतीक्षा है। आज संसार के प्रत्येक मनुष्य को कोई एक प्रतीक्षा है। वह किसी एक चीज की प्रतीक्षा में है, किसी चीज की तलाश में है। किसकी तलाश है यह ?

यह तलाश है जीवन की। अलग-अलग लोगों ने इसे अलग-अलग नाम दिये हैं, पर सचमुच यह तलाश है जीवन की। आज के तरुण को जीना है। वह जीना चाहता है और आनंद से जीना चाहता है। खुलकर जीना चाहता है। अपनी मर्जी के मुताबिक जीना चाहता है। बिलकुल हिरन का बच्चा जिस तरह चौकड़ी भरता है उस तरह जीने की आकांक्षा आज के तरुण के मन में है और वह वैसा जी नहीं पा रहा है। आज के संसार में वैसा जीने की सुविधा नहीं है। जो अत्यंत सुखी लोग हैं, संपन्न हैं, वैभव जिनके पास है, उनको भी वैसा जीने की सुविधा नहीं है। और हमारे देश में तो गरीबी है, भूख है, तो

इस देश में वैसे जीने की सुविधा नहीं है, यह कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है।

जीना क्या है

यह जीना क्या है—यह प्रश्न है। जीना यानी प्रत्यक्ष अनुभव लेना। जिसे अंग्रेजी में 'एट फस्ट हैंड' कहते हैं। 'एट फस्ट हैंड'; 'सैकेंड हैंड' नहीं, दूसरे की मार्फत नहीं। भक्त चाहता है कि भगवान् साक्षात उसे दिखाई दे। भोजन करते हैं तो स्वाद अपनी ही जीभ को आना चाहिए। इसे अनुभव कहते हैं। जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव आना चाहिए। वह आज संसार में रह नहीं गया है। सुखी राष्ट्रों के लोगों को भी वह नसीब नहीं है और दुखी राष्ट्रों के लोगों को तो है ही नहीं।

प्रत्यक्ष जीवन का अर्थ क्या है? पश्चिम के अनेक विचारकों ने निष्कर्ष निकाला कि प्राथमिक अवस्था के मनुष्य का जीवन प्रत्यक्ष जीवन है। आदिवासी, जंगलों में रहनेवाले, पहाड़ों पर जीनेवाले जो लोग हैं, जिन्हें सभ्यता से, संस्कृति से कोई वास्ता नहीं है, वैसे लोगों का जीवन प्रत्यक्ष जीवन है। कुछ लोग इससे भी आगे जाते हैं। उनका कहना है कि पशु का जीवन प्रत्यक्ष जीवन है। वही असली जीवन है। आदिवासी या प्राथमिक अवस्था के लोगों का जीवन प्रत्यक्ष जीवन तो है, पर वह केवल वासना का जीवन है। समाज-शास्त्रियों का कहना है यह जो प्रत्यक्ष जीवन माना जाता है, वह जो 'प्रिमिटिव लाइफ' है, प्राथमिक जीवन है, उसमें वह प्राथमिक मनुष्य 'फाइट्स लाइफ विथ डिज़ायर्स'—अपनी वासनाओं के द्वारा वह जीवन से संघर्ष करता है, लड़ता है इस जीवन में लड़ाकूपन होगा, लड़ाकूपन में जो मजा है वह भी होगा, पर वह कोई प्रत्यक्ष जीवन नहीं है जहाँ संघर्ष होगा, विरोध होगा, मुठभेड़ रहेगी, वहाँ जीवन

का आनंद नहीं है। परंतु कुछ विचारकों ने यह माना है।

ऐसे विचारकों की एक परंपरा है। उनका साहित्य आज संसार में हर कहीं प्रचलित है। ये जो हिप्पी हैं, जिन्हें 'बीट-निक्स', 'बीट जनरेशन' कहते हैं, उनके 'टेडीकॉइज़', 'एंजल्स आफ हैल'—नरक के दूत आदि कई नाम रखे गये हैं, उन तरुणों के वे साहित्य हैं। उन्हें यूँ केवल बदनाम करने से कुछ लाभ नहीं है। उनका केवल निषेध करने से भी कुछ होने वाला नहीं है। देखना यह है कि उनका आविर्भाव हुआ क्यों? उसके मूल में प्रत्यक्ष जीवन की आकांक्षा है। यह बहस बहुत बार हुई है। खास इसीलिए मैं यह सब कह रहा हूँ। गांधी, विनोबा, फ्रांस का रूसो आदि दार्शनिकों का कहना है कि हमें पुनः प्रकृति की तरफ मुड़ना चाहिए। 'बैक टु नेचर'। हम संस्कृति के नाम पर कृत्रिम और दिखाऊ जीवन की ओर बहते गये हैं। इसलिए निसर्ग की तरफ लौट चलना चाहिए। यह उनका आशय है। रूसो ने शिक्षण पर एक बहुत सुंदर पुस्तक लिखी है, प्रसिद्ध पुस्तक है—'एमिली'। इस पुस्तक पर विनोबाजी ने भाष्य किया है। उसमें उन्होंने बड़ी तारीफ की है उस पुस्तक की. 'टामस हाब्स' नामक दूसरे एक दार्शनिक का भी यही कहना है—'बैक टु नेचर'। निसर्ग की तरफ जाना ही प्रत्यक्ष जीवन है, यह कहने-वालों का एक संप्रदाय है। लेकिन हम इस भ्रम में न रहें कि निसर्गानुगमन, प्रकृति के पीछे चलना, निसर्ग के अनुसार व्यवहार करना मनुष्य का प्रत्यक्ष जीवन है।

जीवन का स्वरूप

इन दिनों तत्वज्ञानियों का दूसरा एक संप्रदाय चल पड़ा है। उसका नाम है अस्तित्ववाद, 'एग्जिस्टेंशियालिज्म'। इसका भी अधिक संबंध आजकल के युवकों के आंदोलन से है। इस

संप्रदाय के प्रणेता अनेक हो गये, आज इसका मुख्य प्रवक्ता 'सार्त्र' है। उसका कहना क्या है ? 'मनुष्य वैसा ही बनता है जैसा वह खुद अपने को गढ़ता है।' यह मूल सूत्र है। 'मनुष्य काई की तरह पैदा नहीं होता।' उसी के शब्द हैं। जिस तरह काई पानी पर अपने-आप जमती है उस तरह मनुष्य नहीं है। मनुष्य फुई भी नहीं है—'फंगस,' स्पंज की तरह का एक वनस्पति। चीजों पर जिस तरह फुई लगती है वैसा यह मनुष्य नहीं है। न ही वह 'काली फ्लावर' है, गोभी का फूल है। 'ही इज ए प्रोजक्ट दैट हैज़ ए सब्जेक्टिव एग्जिस्टेन्स, सब्जेक्टिव लाइफ।' उसमें मन है, इच्छा है, संकल्प है। इसलिए जिस तरह कोई वनस्पति या कोई भी अन्य चीज निसर्ग में पैदा होती है, मनुष्य वैसा नहीं है। वह इन सब से निराला है। उसकी 'सब्जेक्टिव लाइफ' है, यानी उसका एक मानसिक जीवन है—शारीरिक, नैसर्गिक जीवन से भिन्न। अर्थात् प्राथमिक जीवन प्रत्यक्ष जीवन नहीं है।

दूसरा जीवन है आधुनिक सुसंस्कृत मनुष्य का। उसके बारे में समाजशास्त्रियों ने लिखा है—'ही फेसेज़ लाइफ विथ क्वेश्चन्स'। आधुनिक मनुष्य जीवन से सवाल पर सवाल पूछता है। एक बात ध्यान में रखो, प्रत्येक सवाल कोई जिज्ञासा का द्योतक नहीं होता। अनेक सवाल हम पूछा करते हैं, उनका हमारे जीवन से खास संबंध नहीं होता और न ही वे हमारे मन से निकले होते हैं। बहुत सारे तो कहीं से उधार लिये हुए होते हैं। कुछ अखबारों से सूझते हैं, कुछ पुस्तकों से सूझते हैं, और कई दूसरों से सुझाये हुए होते हैं। उन सवालों के पीछे जिज्ञासा नहीं होती गंभीरता नहीं होती जिज्ञासा के लिए गांभीर्य चाहिए। इसीलिए मैंने उत्कंठा शब्द का प्रयोग किया। जिज्ञासा के पीछे

तीव्रता चाहिए, मन की छटपटाहट चाहिए। लेकिन यह आधुनिक मनुष्य सवाल ही करता जाता है, लगातार सवाल करता और उन सवालों का कोई उत्तर उसे मिलता नहीं क्योंकि उत्तर संसार में नहीं होते, जीवन में होते हैं। मनुष्य के सवालों के उत्तर यूं कहीं भी, जगह-जगह लिख नहीं रखे हैं भगवान् ने। सवाल यदि हमारे हैं तो उत्तर भी हमारे ही होने चाहिए। यही कारण है कि आधुनिक मनुष्य के जीवन में मिठास नहीं है। प्रत्यक्ष जीवन का प्रसाद यानी आनन्द, प्रत्यक्ष जीवन का आनन्द आधुनिक मनुष्य के जीवन में नहीं है। वह कैसे आये यह सवाल है। इसलिए इससे आगे मैं कोरी 'अब्स्ट्रैक्ट' भूमिका से, केवल सात्विक भूमिका से, नहीं बोलूंगा।

योग्य इच्छा

जीवन में अवरोध किस कारण आता है ? मनुष्य को क्या चाहिए ? सब को एक ही चीज चाहिए कि वह अपनी मर्जी के मुताबिक चल सके, ठेठ छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध मनुष्य तक कहीं नियंत्रण न हो, अवरोध न हो, नियंत्रण न हो, आवरण न हो। लोगों ने इसे **स्वैरता** कहा, स्वच्छंदता कहा, मनस्वी जीवन कहा। लेकिन इसे अनिष्ट मानने का कोई कारण नहीं है। इसमें अनुचित कुछ नहीं है। अगर मनुष्य चाहता है कि मैं अपनी मर्जी से जीयूं, वह मुक्त जीवन चाहता है तो उसमें अनुचित क्या है ? 'अनुचित नहीं' कहने का अर्थ यह कि उसमें न कोई अपराध है, न भूल है, न ही कोई पाप है। कहा जाता है कि पाप अंधेरे में होता है। लेकिन पाप क्या है ? पाप और पुण्य की कल्पना कहीं से उधार ली हुई है। मैंने हिप्पियों का जिक्र किया। इन हिप्पियों का एक गुरु है—मंत्रद्रष्टा गुरु, दीक्षागुरु। उसका नाम है 'हेनरी मिलर'। मिलर ने एक

पुस्तक लिखी है। देखो, ये जो हिप्पी वगैरे हैं, जिनके बारे में तुम समझते हो कि उनमें पाप-पुण्य कुछ नहीं है, उनका वह दीक्षागुरु है, उसने पुस्तक लिखी है—'मर्डर द मर्डरर', खूनी का खून करो। हत्या करनेवाला जो हत्यारा है, जो खूनी है, उसी का वध करो। वह खूनी कौन है ?

सहज कर्म

उसने एक छोटी सी कहानी लिखी है। एक आदमी ने बावन खून कर दिये। और बावन खून करने के बाद उसे पश्चात्ताप हुआ, क्योंकि उसने सुन रखा था और सारे लोग कहते थे कि खून करना पाप है। उसे लगा कि अब मुझे किसी साधु की संगति में जाकर रहना चाहिए। सत्संग के समान दूसरा कोई पुण्य नहीं है। साधुसंगति चाहिए। तो वह गया एक साधु के पास। वह असली साधु था। ढोंगी नहीं था। उससे उसने कहा कि 'मैंने बावन खून किये हैं, मुझे बताइए कि मेरा चित्त शुद्ध कैसे होगा ? मुझे कोई उपाय बताइए।' उस साधु के पास वह साल भर रहा। तब साधु ने कहा—'अब तुम जाओ। तुम शुद्ध हो गये हो। कहीं भी जाओ, कोई खतरा नहीं है। मजे से संसार में जाकर रहो।' उसे कुछ आत्मविश्वास हुआ। अब क्या है ? साधु ने ही कहा है तो जरूर शुद्ध हो गया हूँगा। यह सोचकर वह बाहर निकल पड़ा। कुछ दूर जाने पर उसके मन में शंका पैदा हुई कि मालूम कैसे हो कि मैं शुद्ध हो गया हूँ ? उसका चिह्न क्या है ? किस पर से समझूँ कि मैं शुद्ध हूँ ? यानी उसकी शुद्धता साधु पर अवलंबित थी। साधु ने कहा था कि तुम शुद्ध हो गये हो। इसलिए वह साधु के पास लौट आया और बोला—'महाराज, मुझे डर लगता है।'

'किस बात का डर ?'

'अपने से डर लगता है। मन में शंका होती है कि मैं शुद्ध हुआ काहे पर से ? मेरे हाथों अब पाप नहीं होगा कैसे ? मुझे कुछ न कुछ निशानी दीजिए जिससे पता चले कि मैं शुद्ध हुआ।'

साधु ने काले रंग का एक कपड़ा उसे दिया और कहा—'यह सफेद हो जाय तो समझना कि तुम शुद्ध हो गये हो।'

वह निकल पड़ा। रोज सुबह से रात तक उस कपड़े को बार-बार देखने लगा कि सफेद हुआ कि नहीं। और वह कपड़ा था कि बिलकुल ही सफेद नहीं हो रहा था। क्या करे ? वह सब से पूछने लगा। संसार में जितने एक्स्पर्ट हैं, विशेषज्ञ हैं, अध्यात्म के जितने वैद्य हैं—अध्यात्म के मामले में आज जितने वैद्य हैं उतने और किसी क्षेत्र में नहीं हैं, अध्यात्म में वैद्य लोगों का बाजार गर्म है— तो उन सब के पास वह शख्स गया। जिस-जिस का भी नाम सुना, उन सब के पास गया और पूछने लगा—'महाराज, यह कपड़ा मेरे गुरु ने दिया है। आप बताइए यह काले से सफेद कैसे होगा ? क्योंकि उसके बगैर मैं शुद्ध नहीं हो पाऊँगा।' हर एक ने अपना-अपना नुस्खा बताया। पर कपड़ा सफेद नहीं हो रहा था। अंत में एक ने बताया—'ऐसा करो, तुम काशीजी जाओ और गंगा के पवित्र जल में इसे डुबाओ। उस पानी में यह गुण है। कपड़ा जरूर सफेद हो जायगा।' वह गंगाजी गया। आप नहाया। फिर उस कपड़े को सौ बार गंगाजल में डुबाया। लेकिन वह तो सफेद नहीं हुआ। फिर वह लौट चला। सोचा कि अब उसी साधु के पास ही जाकर बोलना चाहिए कि यह कपड़ा सफेद हो नहीं रहा है। मैं भी शुद्ध नहीं हो सकूंगा।

रास्ते में एक गुंडा, देहाती गबरू जवान एक स्त्री को बेदम

मारता दिखाई दिया। देखकर उसे बड़ा गुस्सा आया। मन में चक्कर चलने लगा कि कहीं मेरे हाथों इस आदमी का खून न हो जाय। अपने को रोके रहा। लेकिन स्त्री की दर्दभरी चीखें सुनकर उससे रहा नहीं जा रहा था। वह उस गुंडे के पास गया। उसे समझाने लगा। उसकी दाड़ी में हाथ लगाया। उस की खुशामद की, पुचकारा। यहाँ तक कहा कि 'इसे मत मारो, मुझसे देखा नहीं जाता। चाहो तो मेरी जान ले लो, पर इस औरत को छोड़ दो।' गुंडा इससे और चिढ़ गया, दूने जोश से उस औरत को मारने लगा। तब उस आदमी से रहा नहीं गया। सूझ नहीं रहा था कि क्या करे। आखिर मन में सोच लिया कि बावन खून तो हो ही गये हैं मेरे हाथों, उस के लिए यदि प्रायश्चित्त करना होगा तो, जैसे बावन वैसे तिरपन ! एक खून और हो जाय तो क्या बिगड़ा ? भरी गाड़ी के लिए सूपे का क्या बोझ ? पाप लगे तो भी हर्ज नहीं, निरंतर नरक सह लूँगा, पर अब यह मुझसे देखा नहीं जाता। यह सोचकर उसने उस गुंडे का काम तमाम कर दिया।

उस गुरु का, उस संन्यासी का आश्रम पास ही था, तो वहाँ गया। आश्रम पहुँचते ही गुरु के चरण पकड़ लिये। बोला— 'महाराज, मैं आपके पास आया था। आपने मुझे कुछ संस्कार दिये। उपदेश भी खूब किये। लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा। एक खून और करके आया हूँ।' साधु ने सांत्वना देते हुए कहा— 'कोई बात नहीं, ऐसा ही हुआ करता है। लेकिन वह कपड़ा कहाँ है जो मैंने दिया था ?' उसने वह कपड़ा बाहर निकाला तो क्या देखता है, वह सफेद हो गया है, उज्ज्वल हो गया है।

इसका नाम है प्रत्यक्ष जीवन, 'स्पांटेनियस एक्शन', सहज कर्म : यह जो कृति हुई इसे स्वाभाविक कृति कहते हैं : यह

सहजस्फूर्त कर्म है। हम गीता वगैरह पढ़ते हैं—'सहजं कर्म कौंतेय' आदि। वह जो दूसरा कर्म है वह विहित कर्म है। उसमें पाप-पुण्य का विचार है। वह सहज अथवा सम्पूर्ण कर्म नहीं है।

स्वाभाविक विकास चाहिए

तरुणों ने आज जो ठीक काम किया वह यह कि पाप-पुण्य का विचार उन्होंने छोड़ दिया। लेकिन भूल कहाँ हुई? तो उसमें 'स्पांटेनिटी' नहीं है। सहजता नहीं है। वह जो पापी था, खूनी था, उसमें 'स्पांटेनिटी' क्यों थी? वह अपने को भूल गया था। उसे अपना भान नहीं रहा था। यह मानवता है। यहाँ पाप-पुण्य का विचार ही नहीं है। यह ध्यान रखो, वह मुक्त पुरुष नहीं था। मुक्त अवस्था का ही नाम सहज अवस्था है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मुक्तावस्था को सहजावस्था बताया गया है। सहजावस्था और मुक्तावस्था एक ही है। जिस काम में मनुष्य स्वयं अपने को भूल जाता है, वह समग्र क्रिया है। लेकिन हम क्या करते हैं? खून का एक तत्त्व-ज्ञान बनाते हैं। 'किसी उदात्त प्रयोजन के लिए हिंसा करने में हर्ज नहीं है' आदि। 'भगवद्गीता में अर्जुन से युद्ध करने को कहा गया है। इसलिए धर्मयुद्ध पुण्यकारक है'—ऐसा निष्कर्ष निकालते हैं। इसमें हम अपने को भूलते नहीं हैं। कर्तव्यबुद्धि से, धर्मभावना से, नैतिकता के खयाल से जो कर्म किये जायेंगे उनमें से मानव का स्वाभाविक विकास नहीं होता। आज संसार का तरुण इस मंजिल तक पहुंचा है। इसलिए आप लोगों के सामने मैं यह विचार रख रहा हूँ। यह पाप-पुण्य के परे विचार है, उस पार का जीवन है, जिसे पुण्य की भी बाधा नहीं है, पाप की भी बाधा नहीं है। यहाँ कोई संयम उस खूनी आदमी को सूझा नहीं है। जब तक उस आदमी के मन में यह

बात थी कि मन को रोकना चाहिए, मैं एक संत के पास रहा था, तब तक उसके हाथ से कुछ भी नहीं हो पाया था।

मित्रो, हम जो लोग हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि हमने अहिंसा का व्रत लिया हुआ है, उनमें और नकसल-वादी लोगों में एक फर्क है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके कारण हमारा तत्त्वज्ञान उदात्त ही नहीं, व्यावहारिक होते हुए भी उसमें जीवंतता नहीं है, उसमें हार्दिकता नहीं है। उन नकसलवादियों में हार्दिकता है, ऐसा नहीं है। केवल तुलना के लिए उदाहरण दे रहा हूँ। उनकी भूमिका में जो दोष है, उसका विचार हम आगे करने ही वाले हैं, लेकिन आज यह विचार करना आवश्यक हो गया है। क्योंकि हमने देखा, कलकत्ते में गांधीजी की तसवीरें जलायी गयीं, गांधी-साहित्य जलाया गया और गांधी-साहित्य की प्रदर्शनी पुलिस पहरे के भरोसे लगानी पड़ी। बड़ी शर्मनाक बात है यह ! गांधीजी के पुतले में गांधी नहीं है, गांधीजी की तसवीर में गांधी नहीं है, गांधीजी की पुस्तकों में गांधी नहीं है।

सन् १९३८ में हुबली में गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन हुआ, तब गांधीजी ने हमसे कहा, 'मेरी 'यंग इंडिया' की ये फाइलें, मेरे लेखों की ये फाइलें और मेरी पुस्तकें मेरे जीवित रहते, मेरे सामने जला डालिए, मेरा नाम लेकर इनकी होली कर दीजिए। वरना ये ही बचे रह जायेंगे और कुछ बचेगा नहीं।'

ये नकसलवादी, जो अभी तक भूमिहीनों को खास कुछ भी जमीन नहीं दिला सके हैं, उनको हम से ज्यादा अपने लगते हैं, अपने निकट के लगते हैं। इसका कारण एक ही है कि उनमें उत्कटता है। उत्कटता में एक प्रकार का आवेश, मन का एक विकार होता है। गुस्सा आता है, रोष आता है तो उसके पीछे

मन का एक जोश होता है, आवेग होता है। पर तु हमारे साथ क्या हुआ है ? हममें न क्रोध का आवेग है, न ही प्रेम की हार्दिकता है। गुस्से का आवेश नहीं, उन्माद नहीं, जोश नहीं, और प्रेम की आत्मीयता नहीं। इसलिए शास्त्रानुसारी विहित कर्म जिस प्रकार चलते हैं वैसा हमारा काम चलता है। इसलिए यदि आज हमने इस पर सोचा नहीं, तो ध्यान रखो, फिर कोई आशा नहीं है—न हमारे लिए, न मानवता के लिए।

सहयोग चाहिए

हम दो-तीन प्रश्न और देखें। और उनके आधार पर विचार करें। जीवन की समस्याओं को लेकर, उनके आधार पर विचार करना होता है। पहली समस्या : आज गांधीजी का साहित्य और गांधीजी के चित्र जलाये जाते हैं। यह क्यों ? यह गांधी ही उन्हें प्रतिपक्षी क्यों लगा ? जो बराबरी का होता है वही प्रतिपक्षी प्रतीत होता है। जो बराबरी का नहीं होता वह प्रतिपक्षी नहीं लगता। यह सूत्र हमें गांठ बांध लेना चाहिए। दारासिंह को दादा धर्माधिकारी प्रतिपक्षी नहीं लगता, क्योंकि उनमें कोई बराबरी नहीं है। जो प्रतिपक्षी होता है वह खलता है, बुरा लगता है। जो खलता नहीं, निर्माल्यवत् है, कमजोर है, उसकी कोई परवाह नहीं करता। लार्ड रीडिंग ने सन् १९२१ में जब गांधीजी का आंदोलन शुरू हुआ तब उनका मजाक उड़ाया। —'द मोस्ट फूलिश ऑफ ऑल फूलिश स्कीम्स'। कहा कि संसार में जितनी भी मूर्खतापूर्ण योजनाएँ आज तक बनी होंगी उन सब से बढ़कर यह मूर्खतापूर्ण योजना है। यह कहकर गांधीजी के आंदोलन का मखौल किया उसने। लेकिन वही बाद में उसका विरोध करने लगा। कहने लगा कि हम उन्हें पकड़ेंगे, दबाकर रखेंगे। तब गांधीजी ने

लिखा, 'फ्राम रिडिक्यूल टु अपोज़िशन'—अब वे मेरे आंदोलन को मजाक में टाल नहीं सकते। उन्हें विरोध करना पड़ेगा। विनोबाजी का आंदोलन आज इस मुकाम तक आ पहुँचा है, कि नकसलवादियों को यही एक प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होने लगा है। नकसलवादियों के अपने ही गुट में जो प्रतिद्वन्द्वी हैं वे दूसरे हैं। वे प्रतिद्वंद्वी तो दावेदार हैं। जिसे अपने जैसा ही हक हो वह दावेदार कहलाता है। एक राजा के चार लड़के हैं, चारों लड़कों का सिंहासन पर समान हक है। वे एक दूसरे के दावेदार हैं। उनका अंतःकलह है। लेकिन गांधी और विनोबा के बारे में जो विरोध है वह इसलिए है कि वे क्रान्ति के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्वी हैं। यह ध्यान में रखना है और हम किसी के प्रतिद्वन्द्वी नहीं होना चाहते—क्रांति के लिए भी नहीं। हमें तो सभी का सहयोग चाहिए।

मैं यह सुझाव रख रहा हूँ कि तरुणों को यहाँ क्या अध्ययन करना है, किस बात की खोज करनी है। हमें क्रान्ति की प्रक्रिया में अविरोध साधना है। वह कैसे साधा जा सकेगा यह अध्ययन और संशोधन का विषय है।

मित्रो, साम्यवाद की प्रेरणा करुणा की है। वह तिरपनवाँ खून करनेवाला है। उसमें आवेश था। हमारे यहाँ भी भगवान् ने नरसिंह का अवतार लेकर हिरण्यकशिपु के पेट में नाखून गड़ाये थे और आंतें बाहर खींच ली थीं। लेकिन मूल प्रेरणा करुणा की थी। वह भक्तवत्सल था, इसलिए दौड़ा आया। प्रक्रिया में क्रूरता है, परन्तु प्रेरणा करुणा की है। उन लोगों को गरीबों के प्रति करुणा है। ऐसी करुणा होगी तो मनुष्य का विचार मुख्य बनता है, शास्त्र का विचार गौण बनता है। मनुष्य के दुःखनिवारण का विचार मुख्य बनता है,

अहिंसातत्त्व का विचार गौण होता है। दुर्दशा देखी नहीं जाती, ठेठ जड़मूल से इस समाज का परिवर्तन होना चाहिए, यह आकांक्षा समूचे संसार के तरुणों में आज है।

तीन

○

चार समस्याएँ

० ० ०

संसार में जितनी भी समस्याएँ हैं वे सब हमारे देश में हैं। हमारा देश मानों जागतिक समस्याओं का एक संग्रहालय ही है।

अपने देश की जिन समस्याओं का जिक्र मैं कर रहा हूँ उनमें दूसरी समस्या वह मनोवृत्ति है जिसके कारण मेघालय की स्थापना हुई। हमारे देश में एक नया राज्य बना। असम के पहाड़ी लोगों का नया राज्य! किस मुद्दे पर बना यह? भाषा के प्रश्न को लेकर बना। उन पहाड़ी लोगों की भाषा एक नहीं है। नागालैण्ड में छब्बीस भाषाएँ हैं। उन सब से अलग एक सामान्य भाषा के रूप में एक कृत्रिम भाषा बनायी गयी है। असमिया शैली की है वह। लेकिन वहाँ कुल छब्बीस भाषाएँ हैं। तो फिर किस मुद्देपर उन्हें स्वतन्त्र राज्य की जरूरत पड़ी? उनका मुद्दा यह था कि हम अलग मानववंश के लोग हैं। आपकी और हमारी जाति ही भिन्न है। अंग्रेजी में जिसे 'रेस' कहते हैं। अमरीका में काले-गोरे का जो विवाद

चल रहा है उसी कोटि का यह भी है। 'रेस' के मुद्दे पर उन पहाड़ी लोगों ने कहा कि हमें स्वतन्त्र राज्य चाहिए। उनका कहना है कि उनकी संस्कृति ही अलग है, उसे संरक्षण मिलना चाहिए। हमें इस पर विचार करना है। यह क्या चीज है? यह माँग क्यों पैदा हुई? इसका क्या अर्थ है?

भिवंडी और जलगाँव की समस्या

तीसरी समस्या है भिवंडी और जलगाँव की। भिवंडी और जलगाँव में जीवनभर के साथियों ने, परस्पर मित्रों ने एक दूसरे की जान ली, एक दूसरे के प्राण लेने और खून पीने पर उतारू हुए। वे यह कैसे भूल गये कि हम सब मनुष्य हैं? मनुष्य ऐसा राक्षस कैसे बन सकता है? पशु ऐसे नहीं होते, यह तो सब जानते हैं। जानवर कभी ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिए मैं जानवर की उपमा नहीं देता। उन बेचारों का अपमान नहीं करना चाहिए। एक बाघ दूसरे बाघ को धोखा देकर इस तरह खून करेगा ऐसा मुझे नहीं लगता, भले ही बाघ कितना ही क्रूर हो। भेड़िया भी ऐसी नृशंसता नहीं करेगा। जो अनहोनी घटनाएँ अहमदाबाद में, भिवंडी में या जलगाँव में हुईं, उनके पीछे प्रेरणा क्या रही होगी? मैंने आपसे कहा कि नकसलपंथी लोगों की प्रेरणा करुणा की है, लेकिन काम आसुरी है। उधर मेघालय में और अमरीका में प्रेरणा वंश की है, जाति की है। और अब यह प्रेरणा कौन-सी है? लोग कहते हैं कि यह धर्म की प्रेरणा है, धर्मप्रेरणा का यह परिणाम है। तो फिर अब धर्म की प्रेरणा में मानवता रह नहीं गयी, यह स्पष्ट ही है।

चौथी घटना बेलगाँव का विवाद और कृष्णा-कावेरी का झगड़ा है।

ये चार घटनाएँ आज की समस्याओं की सूचक घटनाएँ हैं,

उपलक्षणात्मक हैं। ये चार समस्याएँ हमारे देश में हैं और चारों को हमें हल करना है। हमारा आग्रह क्या है ? यह कि इन्हें अपनी पद्धति से हल करना है। मेरा निवेदन है कि पद्धति का आग्रह पहले छोड़ दीजिए। इन समस्याओं का हल करना है इतनी भर चिंता रहने दीजिए। पद्धति का आग्रह मत रखिए।

पद्धति के आग्रह में क्या आता है ? आनुशासनिक सदाचार, संगठित औपचारिक सदाचार, विहित आचरण। धर्म में यह हिस्सा सबसे बड़ा है।

हमारी दादी कहा करती थी। एक बार एक बहन पड़ोस के घर थोड़ा दही माँगने गयी। उस घर की बहू ने कहा कि 'घर में दही नहीं है।' तो वह लौट चली। उस बहू की सास उधर से आ रही थी, बाहर ही मिल गयी तो पूछा—'कहाँ से आ रही हो ?' पड़ोसन ने कहा—'तुम्हारे ही घर गयी थी।' 'क्यों ?' 'दही मांगने।' 'क्या हुआ ?' 'बहू ने कहा दही नहीं है।' तब सास ने कहा—'तुम मेरे साथ लौट चलो।' उसे साथ लेकर घर आयी। अपने पीढ़े पर बैठी और पूछा—'क्या चाहिए?' 'दही चाहिए।' 'हमारे घर में दही नहीं है।' 'अरे, बहू ने भी तो यही कहा था, और तुम भी वही कह रही हो।' 'लेकिन वह अनधिकृत था, 'अनअफ़िशियल' था। वह अधिकार उसे नहीं है।'

धर्म में शास्त्रविहित कर्म मुख्य है और शास्त्र विहित कर्म मुख्य होने के कारण संगठित धर्म मानवता का शत्रु हो गया है। और अब स्थिति यह है कि संगठित धर्म जब तक रहेगा तब तक मानवता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है, अवसर नहीं है। इसलिए इस विहित सदाचार को संसार से मिटा देना है,

यह तरुणों ने तय कर लिया है।

जीवन का अर्थ

चार सवाल, चार समस्याएँ आपके सामने रखी हैं। इनमें से हल खोजना है। हल खोजने से पहले फिर एक बार वहजो पहला मूल प्रश्न था, उसे लें और फिर हल खोजना शुरू करें। मूल प्रश्न क्या था? मनुष्य को क्या चाहिए? मनुष्य को जीवन चाहिए। और जीवन का अर्थ क्या? यह कि हम मनुष्य की तरह जी सकें, स्वैर व्यवहार कर सकें, यह हर एक को चाहिए। इसके साथ और क्या चाहिए? यह कि दूसरा भी मुझमें शामिल रहे। अकेला संसार में जी ही नहीं सकता। मनुष्य की यह दूसरी विशेषता है। जानवर भी कोई अकेले जी नहीं सकते, परन्तु मनुष्य तो कतई नहीं जी सकता। अकेले में जीवन नहीं है। एकान्त में मृत्यु हो सकती है, जिन्दगी नहीं। एकान्त में ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है, पर जीना मुश्किल है। और मनुष्य कहता है कि मैं एकान्त में जीता हूँ। लेकिन उस एकान्त में भी वह मन का एक भावनात्मक संसार निर्माण कर लेता है। लेकिन वह एक स्वतन्त्र विषय है। इस वक्त उसे हम छोड़ देते हैं। क्षणभर के लिए यह मानकर चलें कि कुछ लोग एकान्त में जीना चाहते हैं, जीते भी हैं। लेकिन उसे कोई जीवन नहीं कह सकते। जीवन तो दूसरों के साथ जीने में है। औरों के साथ यदि हम जी सकें तो जीवन है। औरों के साथ जी नहीं सके तो जीवन नहीं है। तो अब यहाँ संघर्ष आया। लड़ाई आई। मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी मर्जी के मुताबिक जीऊं। मेरी इच्छा अपनी मर्जी के अनुसार जीने की है, इसका अर्थ यह कि सब मेरी मर्जी के अनुसार जीयें। और आपकी इच्छा यह है कि मैं आपकी मर्जी के अनुसार चलूँ। यह संघर्ष है। यहाँ विरोध

आता है। इसमें से मार्ग खोजना है। यह है संस्कृति। जिसे हम संस्कृति की कसौटी कहते हैं, 'टैस्ट ऑफ सिविलाइजेशन', 'टैस्ट ऑफ कलचर' कहते हैं। यह संस्कृति की खोज है। औरों के साथ कैसे जिया जाय। इससे अलग कोई सांस्कृतिक समस्या नहीं है।

'पड़ोसियों पर प्रेम करो'

अब तक क्या हुआ है? फिलहाल संसार की बात छोड़ द, देश में क्या हो रहा है यह देखें। हम एक दूसरे के पड़ोस में तो रह सके, पर एक दूसरे के साथ नहीं रह सके। आज तक का हमारा यह इतिहास है। और हमें अपने इतिहास का बड़ा गर्व है कि चूँकि हमारे यहाँ जातिसंस्था रही है, इसलिए हमने दूसरों के जीवन में दखलंदाज़ी नहीं की। हमने दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप नहीं किया। इसका कितना बड़ा अभिमान! आप को प्यास लगी है, छटपटा रहे हैं, तड़प रहे हैं, एकदम मरने को हो रहे हैं। मैं क्या कहता हूँ? हम दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप करनेवाले नहीं हैं। यह हमारी नीति है। इसका एक लाभ हुआ। प्रत्यक्ष झगड़े कम हुए। प्रत्यक्ष अत्याचार कम हुए। लेकिन एक बड़ी हानि हुई। मनुष्य मनुष्य के साथ जी नहीं सका। मनुष्य के जीवन में मनुष्य प्रवेश नहीं पा सका। एक आदमी के जीवन में दूसरे आदमी का प्रवेश हमारे देश में हो नहीं सका। इसीलिए सभी धर्मों में एक आदेश है—'पड़ोसियों पर प्रेम करो।'

सांस्कृतिक समस्या

'पड़ोसियों पर प्रेम करो'—इस विधान पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ करता था। कारण मालूम नहीं होता था। 'पड़ोसियों पर प्रेम करो'—इसमें कौनसी खास बात है? यह कहने

के लिए धर्म की क्या आवश्यकता है, ऐसा लगता था। पर जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ती गयी और उम्र के साथ थोड़ी अक्ल आने लगी तब मैंने देखा कि पड़ोसी पर प्रेम करना बड़ा कठिन कार्य है। संसार में चाहे जिसपर प्रेम किया जा सकता है, पड़ोसी पर करना मुश्किल है। इसका मुख्य कारण यह है कि पड़ोसी हम चुन नहीं सकते। पड़ोसी हमारे हाथ की बात नहीं है। वह कौन है ? मेरा मित्र है। मित्र कैसे हुआ ? मैंने बनाया। यह कौन है ? मेरा शत्रु। शत्रु कैसे हुआ ? मैंने किया। मैंने माना इसलिए मित्र है; मैंने माना इसलिए शत्रु है। लेकिन मुझपर अवलंबित नहीं है। वह है इसलिए है। 'है इसलिए है' —का अर्थ यह कि जैसे प्लेग होता है वैसे है। यानी उसपर मेरा कोई बस नहीं है। सतत सान्निध्य है, पर अंतःकरण का कोई वास्ता नहीं। यह समस्या है। सवाल है कि पड़ोसी मित्र कैसे हो ?

ये जो सारी चार-पाँच समस्याएँ बतायीं, उन सब समस्याओं का सामान्य रूप यह है कि पड़ोसी मित्र कैसे बने ? यह है 'कलचरल प्राब्लम'। इसे सांस्कृतिक समस्या कहते हैं। संसार की सांस्कृतिक समस्या यह है कि मेरा पड़ोसी मेरा सखा कैसे बने ?

सख्यभक्ति का युग

विनोबाजी का सारा कथन, सारा निरूपण उपनिषद् के समान होता है। वे कहा करते हैं कि सख्यभक्ति आज का योग है। जो मंत्रद्रष्टा ऋषि होता है उसके शब्द सहजस्फूर्त होते हैं। समाजवाद का शब्द 'कामरेड', साथी, संगी है। साथी किसी कारण से होता है। श्रमदान के लिए जाते हैं, साथी हैं। एक कक्षा में बैठते हैं, साथी हैं। रेल के डिब्बे में बैठते है, एक ही

स्टेशन पर उतरना है किसी विवाह के निमित्त, वे साथी हुए। साथी रहें। साथी आवश्यक है। लेकिन साथी संस्कृति का असली घटक नहीं है। क्योंकि साथीपन किसी प्रयोजन पर निर्भर करता है। सांस्कृतिक जीवन का घटक होता है मित्र, सखा। तो यह जो सख्यभवित का योग है, वह 'कामरेडशिप' के आगे का कदम है। समाजवाद, साम्यवाद 'कामरेडशिप' तक आया। वह कहता है कि समस्त मनुष्य हमारे साथी हैं। कोई बड़ा नहीं, छोटा नहीं, कोई श्रेष्ठ नहीं, कोई कनिष्ठ नहीं। हम सब समान हैं, साथी हैं, सब 'कामरेड्स' हैं। पत्नी 'कामरेड' है, भाई कामरेड' है, माँ 'कामरेड' है, गुरु 'कामरेड' है। यहाँ तक आया समाजवाद, साम्यवाद। लेकिन 'कामरेडशिप' पर्याप्त नहीं है। वह जरूरी है, पर काफी नहीं है। एक कदम आगे जाना होगा। वह कदम कौन-सा है ? सख्य का है।

तो वे बंधुत्व क्यों नही कहते ? समाजवादियों ने साथी शब्द क्यों चलाया ? बंधुत्व शब्द पुराना है। जैसे विश्वबंधुत्व। वह भी पुराना शब्द है। बंधुत्व में रक्त संबंध की बू आती है। मैं 'बू' कह रहा हूँ। सौम्य शब्द इस्तेमाल कर रहा हूँ। कम्युनिस्ट कहता है—'बदबू' आती है। उसे रक्त की बदबू आती है। और उसकी घ्राणेंद्रिय तेज होती है। वह कहता है कि बंधुत्व शब्द में रक्त की बदबू आती है। इसलिए हम बंधु नहीं हैं, साथी हैं। इस प्रकार बंधुत्व शब्द निकाल बाहर कर दिया गया।

व्यवहार में प्रेम की पहचान

जो साथी से आगे का है, वह सखा है। उसमें तीन बातों का समावेश होता है। 'एरिक फ्राम' बड़ा आधुनिक वैज्ञानिक है, समाजशास्त्री है, 'फ्रायड' के बाद का मनोवैज्ञानिक। उसका शब्द है—'प्रेम की पहचान'। व्यवहार में प्रेम की क्या पहचान है ?

ये चिह्न हैं, तो प्रेम है ही, ऐसी बात नहीं है, लेकिन ये चिह्न न हों, तो इस बात में शंका है कि प्रेम है या नहीं। 'केअर, कन्सिडरेशन ऑफ रेस्पेक्ट।' 'केअर' का अर्थ है ख्याल रखना। जिस पर प्रेम है उसका ख्याल रखा जाता है। मैं खाने के लिए बैठा, तो वह कहाँ है ? उसे समय पर खाना मिलता तो है ? जाने वह किस हाल में होगा ? मैं यहाँ महाबलेश्वर में हूँ। राजस्थान में गरमी की लू तेज चलती है। वह कहाँ होगा ? सुखी तो है ? 'केअर' का अर्थ 'वरी' नहीं है। 'वरी' यानी संताप, मनस्ताप। वह अलग है। 'केअर' का अर्थ है ख्याल, चिन्ता। 'कन्सिडरेसन' का अर्थ है कद्र। उस व्यक्ति के जीवन के प्रति कद्र है, आस्था है। 'रेस्पेक्ट' का अर्थ है आदर, सम्मान। आदर का अर्थ वह नहीं जो आम तौर पर हम समझते हैं। आदर शब्द के लिए अंग्रेजी में दूसरा एक सुंदर शब्द है—'सेक्रेडनेस'। बच्चे का शरीर पवित्र लगता है, वह आदर है। बच्चे के प्रति प्रेम है। उसका शरीर पवित्र लगता है। पत्नी के प्रति प्रेम है। उसका शरीर पवित्र लगता है। गांधीजी के एकादश व्रतों में स्पर्शभावना एक व्रत है। वह स्पर्शभावना आदर की भावना है। तो 'कामरेड' नहीं, सखा। इस सखा शब्द में चिंता, कद्र और पवित्र भावना तीनों का समावेश है।

मेरा पड़ोसी मेरा मित्र कैसे बनेगा ? आज क्या होता है ? कन्नड़भाषी मेरा पड़ोसी है, गुजराती मेरा पड़ोसी है। मन करता है कि वह किसी तरह दूर हो। और एक भ्रम है कि इसमें से संस्कृति का विकास होगा। पड़ोसी के रक्त में बू आती है। वह किस वंश का है ? किस जाति का है ? उसके रक्त की बू आती है। इसलिए आज सारे संसार में सब से बड़ी और पहली समस्या है कि पड़ोसी मित्र कैसे बने ?

हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता

अब, यह पड़ोसी कौन-कौन है ? अमीर-गरीब पड़ोसी हैं, एक-दूसरे के लिए अप्रिय हैं, लेकिन पड़ोसी हैं। हिंदू-मुसलमान हमारे यहाँ सांकेतिक हैं। उसमें अन्य सभी आ जाते हैं। पारसी सिख, ईसाई, यहूदी आदि सब का समावेश हो जाता है। वे पड़ोसी हैं। मराठी और कन्नड़ी हैं। बहुसंख्यक नागरिक पड़ोसी हैं। इन पड़ोसियों में सौहार्द कैसे निर्माण हो ? सौहार्द यानी मैत्री। मैत्री में हृदय का संबंध आता है। यह हार्दिकता कैसे निर्माण हो ? यह सवाल है। और इससे जुड़ा दूसरा एक उप-प्रश्न है—'करोलरी' जिसे कहते हैं— वह यह है कि यदि आज की परिस्थिति में बदल लाना है, परिवर्तन लाना है तो वह परिवर्तन मैत्री के लिए सहायक कैसे होगा। समाज-परिवर्तन ऐसी पद्धति से लाना है कि जिससे मैत्री का विकास हो। जो आज मित्र नहीं हैं, वे मित्र बनने चाहिए ? समाज-परिवर्तन करते समय, समाज-परिवर्तन हो जाने के बाद नहीं, जब वह हो रहा होता है तभी, उस प्रक्रिया में ही ये पड़ोसी एक-दूसरे के समीप कैसे आयें यह आज की खोज का विषय है।

मित्रो, शरीर से पास होकर भी मन से यदि मनुष्य पास नहीं है तो उसके समान भयंकर स्थिति दूसरी नहीं है। मन से दूर रहने वाले लोग जब शरीर से पास आयेंगे तब मारामारी के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। हम शरीर से पास आये, मन से नहीं आये, इसलिए गांधीजी ने कहा— 'मनुष्य का मन बदलना चाहिए'। इसका नाम है हृदय-परिवर्तन।

शरीर से जो लोग पास आ रहे हैं, उनके मन में परिवर्तन लाना चाहिए। मन को पास आने देने में जो भी आड़े आता हो, जो भी व्यवधान हो, जो भी अन्तराय हो, उसे मिटाना

चाहिए। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो अंतराय हों, उनके मन को समीप आने देने में जो बाधाएँ हों, वे सब बाधाएँ दूर करनी चाहिए। ऐसी कितनी बाधाएँ हैं? मालिकी और मिल्कियत— यह अमीर-गरीब के बीच की बाधा है। हिंदू और मुसलमान आदि में संप्रदाय है। हिंदू-हिंदुओं में जाति है। ये सब बाधाएँ हैं।

गांधी-हत्या के समय महाराष्ट्र में यदि समझदार, विवेकी लोग न होते तो वहां ब्राह्मणों का समूल उच्छेद हो गया होता। उसमें कोई हिंदू-मुस्लिम नहीं थे, सब हिन्दू ही थे। पर हिंदुओं में जातिवाद है। अस्पृश्यों को जलाया जाता है, जिंदा जलाया जाता है। इन के अलावा 'हिल ट्राइब्स', वंश, 'रेस' आदि भी हैं ही।

तो हमने पहले विचार यह किया कि संसार में आज आकांक्षा क्या है। आकांक्षा या उत्कंठा प्रत्यक्ष जीवन की है। लेकिन प्राथमिक मनुष्य का जीवन प्रत्यक्ष जीवन नहीं है। कई आदिवासियों में तो 'हैड कटिंग' (मनुष्य का सिर काटना) विहित कर्म है। वासना का जीवन प्रत्यक्ष जीवन नहीं है। फिर, जिसमें सवाल ही सवाल हों, पर जीवन की खोज न हो, वह भी प्रत्यक्ष जीवन नहीं है। तो प्रत्यक्ष जीवन क्या है? एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ जब संबंध आता है, तब आत्मीयता के कारण जो घटित होता है वह प्रत्यक्ष जीवन है। उसमें हार्दिकता होती है, जीवंतता होती है। नक्सलवादियों के कर्म में एक स्वाभाविक प्रेरणा दिखाई देती है, लेकिन वह सहज कर्म क्यों नहीं? क्योंकि उन्होंने उसका तत्त्वज्ञान बनाया है, योजना बनाई है। हिंसा का तत्त्वज्ञान अहिंसा का तत्त्वज्ञान बनाने से भी भयंकर है। हिंसा का एक टेकनीक है। अमुक एक पद्धति से करनी

चाहिए। इस तरह का पद्धति का आग्रह होता है। इसलिए उनका कर्म कलुषित हुआ है। और हमारी क्या स्थिति है? आवेश भी नहीं, हार्दिकता भी नहीं। केवल एक शास्त्र है—शान्ति का, अहिंसा का। लेकिन गरीबों के प्रति तड़प नहीं है। इसलिए हमारे काम में जीवंतता नहीं है।

हमने चंद प्रतीकात्मक समस्याएँ लीं और उन पर से निष्कर्ष निकाला। यह प्रश्न क्यों उपस्थित हुआ? इसलिए कि हमारा पड़ोसी हमारा मित्र नहीं है। पड़ोसी मित्र बनना चाहिए। पड़ोसी को मित्र बनाने की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया से क्या समाज का परिवर्तन होना संभव है? यह आज का प्रश्न है, क्रांति के तंत्र का अंतिम प्रश्न। जिस तंत्र से पड़ोसी मित्र बनेगा, क्या उसी तंत्र से समाज-परिवर्तन शक्य है?

चार

○

जड़-मूल से क्रांति चाहिए

० ० ०

आज संसार के तरुणों में एक उत्कंठा जोर पकड़ रही है। उस उत्कंठा का स्वरूप है प्रत्यक्ष जीवन की आकांक्षा। प्रत्यक्ष जीवन क्या है? प्राथमिक जीवन प्रत्यक्ष जीवन नहीं है। आधुनिक सुसंस्कृत मनुष्य का अर्वाचीन जीवन भी प्रत्यक्ष जीवन नहीं है। प्रत्यक्ष जीवन का अर्थ है मनुष्य का एक-दूसरे के साथ जीना। यह एक निष्कर्ष है। दूसरा निष्कर्ष यह कि हमारे देश में और संसार में मनुष्य एक-दूसरे के पड़ोस में जीते हैं, पर साथ नहीं जीते हैं। उनमें मैत्री नहीं है। वे एक-दूसरे के समीप हैं,

पर उनमें सौहार्द नहीं है। यह समीपता केवल शरीर की है, मन की नहीं। यह जो पड़ोसीपन है, उस पड़ोसीपन के साथ मनुष्य की मैत्री का विकास कैसे हो? इसका हमें विचार करना है। मनुष्य पड़ोसी होते हुए भी मित्र क्यों नहीं है? इसके कई कारण हैं। पहले हमने कहा है कि ये अंतराय हैं, प्रत्यवाय हैं। इनके कारण मनुष्य एक-दूसरे के समीप होते हुए भी एक-दूसरे के साथ जीते नहीं हैं। इनमें से चन्द प्रत्यवायों का जिक्र हमने पहले किया है। एक है—मालिकी और मिल्कियत। दूसरा है—संप्रदाय या धर्म। तीसरा जाति। चौथा—भाषा, संस्कृति। और पाँचवाँ—वंश या 'रेस'। लेकिन यदि इन सब प्रत्यवायों को हटाना है, यदि इनका निराकरण करना है, तो आज के समाज की बुनियाद ही बदलनी होगी। उसके बिना चारा नहीं। इधर-उधर थोड़ा-बहुत फेरफार करने से मसला हल होने वाला नहीं है। समूचे समाज की बुनियाद ही बदलनी चाहिए। यानी जड़मूल से क्रान्ति होनी चाहिए।

क्रांति के दो आयाम

क्रांति के दो आयाम हैं—पहला—संदर्भ बदलना। और दूसरा—समाज में जो 'प्रचलित मूल्य' हैं, उन 'प्रचलित मूल्यों' को बदलना। समाज में तो तात्कालिक मूल्य होते हैं, अमुक समय की अवधि के जीवन के जो मूल्य हैं, उन्हें 'प्रचलित मूल्य' कहतेहैं।

जीवन के चन्द शाश्वत मूल्य होते हैं। शाश्वत मूल्यों की एक ही पहचान है। जीवन में जिसे किसी प्रकार के कारण की जरूरत नहीं होती, वह शाश्वत मूल्य होता है। किसी भी कारण से जो बदलता नहीं, जिसमें परिवर्तन नहीं होता वह शाश्वत मूल्य

है। ऐसे शाश्वत मूल्य कौन से हैं ? जिन मूल्यों के आधार पर जीवन के अन्य सारे मूल्यों की कीमत आंकी जा सके, ऐसे मुख्य मूल्य जीवन में कौन से हैं ? आध्यात्मिक क्षेत्र में कई लोगों को लगता है कि इस जीवन का खास मूल्य नहीं है। इसकी चर्चा यहाँ हमें नहीं करनी है, लेकिन बाकी सब,संसार के जितने भी क्रांतिकारी हुए वे सब इस बारे में एक मत हैं, सबकी एकवाक्यता है, कि परम मूल्य 'जीवन' है। जीवन का संरक्षण और जीवन का संवर्धन, मनुष्य के जीवन की सुरक्षा और मनुष्य के जीवन का विकास क्रांति का लक्ष्य है। जीवन का मापक (मेजर) भी जीवन ही है । बाकी सब वस्तुओं का बाजार भाव इस जीवन के नाप से तय करना होता है। आज उस प्रकार तय नहीं किया जाता। जीवन की दृष्टि से वस्तुओं का मूल्याँकन करने का नाम क्रांति है । मूल्य परिवर्तन कैसे होगा ? 'हेनरी मिलर' का एक वाक्य है, वह कहता है कि विश्वव्यापी, जगद्व्यापी क्रांति चाहिए। 'ए वर्ल्डवाइड रेवोल्यूशन फ्राम टॉप टु बॉटम, इन ऑल रेल्म्स ऑफ ह्यूमन कान्शसनेस'। मानव चेतना के समूचे क्षेत्र में जड़मूल से क्रांति चाहिए। यह 'हेनरी मिलर' कोई आध्यात्मिक पुरुष नहीं है । महानास्तिक है। वह कहता है-'इन आल रेल्मस ऑफ ह्यूमन कान्शसनेस'—मनुष्य चेतना के समस्त क्षेत्रों में क्रांति होनी चाहिए। गांधीजी की परिभाषा में इसी का नाम हृदय-परिवर्तन है।

संदर्भ परिवर्तन की आवश्यकता

क्रांति का दूसरा आयाम है—'चेंजिग द कान्टेक्स्ट' संदर्भ बदलना। मूल्यपरिवर्तन और संदर्भपरिवर्तन । आज मनुष्य जिस संदर्भ में, जिस परिस्थिति में रहते हैं, उसमें बदल होना

चाहिए। संदर्भ का अर्थ है मनुष्य का मनुष्य से संबंध। मनुष्य का मनुष्य से जो संबंध है उसका नाम है संदर्भ। यह संदर्भ तीन प्रकार का है। हाल ही में एक पुस्तक निकली है। उसके लेखक का नाम है—'विक्टर फरकिस'। पुस्तक का नाम है—'टकनोलाजिकल मैन—द मिथ एण्ड द रियालिटी'। टकनोलाजिकल मैन यानी यंत्रयुग का मनुष्य। उसका वास्तविक और काल्पनिक स्वरूप। वह कहता है कि अब मनुष्य के संदर्भ पर विचार करना है तो तीन प्रकार के रिश्तों का विचार करना होगा। एक है, 'न्यू नेचुरलिज्म'-नवनिसर्गवाद। मानव और निसर्ग का संबंध। वह कैसा हो ? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अब यदि मृच्छकटिक नाटक के नायक की भाषा में कहने लगें कि—'उदयति शशाँकः कामिनीगण्डपाण्डुः'—रजनीनाथ नभ में उदित हो रहा है और वह नव युवती के उज्ज्वल भाल प्रदेश के समान है, तो चन्द्रमा पर हो आने वाला व्यक्ति क्या कहेगा। अरे हम साक्षात् चांद देख आये हैं। वह तो एकदम ऊबड़-खाबड़ है। किसी तरह का सौंदर्य नहीं वहाँ। तो प्रश्न है कि निसर्ग के साथ मनुष्य का जो संबन्ध है वह किस प्रकार का हो। गंगा केवल पानी है, यह वस्तुस्थिति है। लेकिन कवि कहता है—मातः शैलसुतासपत्नि, वसुधा श्रृंगारहारावलि स्वर्गारोहण वैजयंती—' तू हमारी मां है, शैलसुता पार्वती की सपत्नी यानी सौत है, वसुधा के श्रृंगार की माला है, स्वर्गारोहण का सोपान है। यह सब गंगा के बारे में कहा है। मनुष्य का निसर्ग से किस प्रकार का संबंध हो यह एक स्वतंत्र प्रश्न है। लेकिन मैं केवल इतना ही उल्लेख कर रहा हूँ कि मनुष्य के कौन-कौन से रिश्ते हैं, संदर्भ परिवर्तन क्या है यह स्पष्ट करने के अनुषंग में। यह है आधुनिक निसर्गवाद। दूसरा है--

होलिज्म' । 'फरकिस' अमरीकी है, इसलिए होलिज्म (wholism) का (हिज्जे) स्पेलिंग उसने किया है (holism)। अर्थ है 'नवीन समग्रतावाद ।' 'असंशयं समग्र मां यथा ज्ञास्यसि तत् शृणु।' ज्ञान में असंदिग्धता तो चाहिए ही, समग्रता भी चाहिए। नवीन समग्रतावाद में क्या-क्या आता है ? 'इकोलाजी'। पृथिवी पर जीवमात्र के पोषण के लिए, जीवन के संगोपन के लिए जो परिस्थिति चाहिए उसे 'इकोलाजी' कहते हैं, उस शास्त्र का नाम 'इकोलाजी' है। उसमें मनुष्य का मनुष्य से संबंध विवक्षित नहीं है, बल्कि मनुष्येतर जीवों से संबन्ध, वनस्पति तथा अन्य जीवराशियों से संबन्ध अभिप्रेत है। ये सारे जीव-समूह मिलकर एक सामान्य जीवन है । उनकी उत्पत्ति के लिए और निर्वाह के लिए जो विशिष्ट परिस्थिति आवश्यक है उसको ध्यान में रखकर 'न्यू इकोलाजी' शब्द प्रयोग किया गया है ।

यहां हमने खेती का भी प्रयोग शुरू किया है और वह एक समग्र विचार है क्रांति का । आजकल के कृषि विज्ञान में 'लिविंग सायल' का, यानी इस मिट्टी में जो जीवन है, जो जीव-जन्तु हैं, उनका स्थान है इसका भी विचार किया जाता है। इसलिए उसमें इकोलाजी का अन्तर्भाव होता है । इस सारे विचार को 'न्यू होलिज्म' का नाम 'फरकिस' ने दिया है।

इसके बाद तीसरा विषय है—'न्यू इंमेनॅन्टिज्म' । मनुष्य के इस त्रिविध संदर्भ का अधिष्ठान एक मूलभूत सर्वव्यापी चैतन्यतत्व का ब्रह्मांडव्यापी जीवन है। वह है इंमेनॅण्टिज़्म। इस तत्त्व को कोई जीवन शक्ति कहता है, कोई ऊर्जा कहता है, किसी ने ब्रह्म कहा तो किसी ने परमात्मतत्व कहा। कई नाम दिये गये हैं। सारांश यही कि मानवीय संबन्धों की जड़

में एक अधिष्ठानभूत, अखण्ड और सर्वव्यापी चैतन्य है।

इतना सारा आशय है संदर्भ परिवर्तन का। इतना सब क्यों कहना पड़ा ? पुराने समाजवादियों ने यानी परंपरावादी समाजवादियों ने और आज तक के साम्यवादियों ने केवल इतना ही विचार किया कि उत्पादन का और वितरण का संबंध बदल जाता है तो संदर्भ बदल जाता है। उत्पादन का सम्बन्ध उत्पादन के औजार और उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन आ जाय तो संदर्भपरिवर्तन हो गया, क्रांति हो गयी। लेकिन यह क्रांति का समग्र विचार नहीं है।

दो महत्त्वपूर्ण विचार

बाद के जो समाजवादी हुए उनमें से खासकर अपने देश के चंद प्रमुख समाजवादियों का मैं उल्लेख करूँगा। दूसरे देशों के समाजवादियों का उल्लेख यहां करना नहीं है। तो, इन आधुनिक समाजवादियों ने मार्क्स के प्रतिपादन की कमियों की पूर्ति की और उसे कुंठित भी किया। कई वर्ष पहले पचमढ़ी में समाजवादी पक्ष की एक बैठक हुई थी। उसमें डा० राममनोहर लोहिया ने समाजवाद के नवसंस्करण का निबन्ध पेश किया। वह पचमढ़ी-थीसिस कहलाता है। इतिहास की कई घटनाएँ बड़ी मजेदार होती हैं। यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना रूस में हुई। तब यह चर्चा चली कि उसे 'इंडियन कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया' कहा जाय। 'इंडियन कम्युनिस्ट पार्टी' कहने पर कम्युनिज्म में भी कोई इंडियन कम्युनिज्म है और कोई नान-इंडियन कम्युनिज्म भी है, यानी कम्युनिज्म भी कोई भारतीय और कोई अ-भारतीय होता है इस प्रकार का श्लेष निकलेगा। यह सोचकर 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया' नाम रखा गया। उसकी स्थापना रूस में हुई। जिन लोगों ने इस दल

की स्थापना की उनमें मानवेंद्रनाथ राय भी थे। बाद में वे मार्क्स का निषेध कर 'न्यू ह्यूमैनिज्म' अथवा 'रैडिकल ह्यूमैनिज्म'—नवमानवतावाद या क्रांतिकारी मानवतावाद के प्रवर्तक हुए। एक मौलिक विचार उन्होंने संसार के सामने रखा।

उसी प्रकार मौलिक विचार इस देश में डा० राममनोहर लोहिया का है। वह उनका पचमढ़ी का निबंध है। उसके बाद इस देश की समाजवादी पार्टी ने मार्क्स के कथन को संपूर्ण मान्य किया नहीं, बल्कि एक नया थीसिस, एक नया विचार, नया प्रमेय लोगों के सामने रखा गया। उसका एक मुख्य विचार यह है कि केवल उत्पादन और वितरण की परिस्थिति बदलने मात्र से क्रांति हुई ऐसा नहीं कहा जा सकता। दूसरे क्षेत्रों में भी परिवर्तन करना क्रांति का अभीष्ट है।

लेनिन का मत

पहले हमें संदर्भ-परिवर्तन का विचार करना है। मूल्य-परिवर्तन का विचार बाद में करेंगे। परिस्थिति बदलती है तो मनुष्य बदलता है ऐसा माना जाता है। इसलिए हम पहले संदर्भ-परिवर्तन पर विचार करेंगे।

मनुष्य आज जिस स्थिति में जी रहा है, उस परिस्थिति में परिवर्तन होना चाहिए। परिस्थिति ही क्यों बदली जाय ? क्या प्रयोजन है बदलने का ? लेनिन ने एक उद्देश्य बताया। लेनिन ने एक जगह कहा है कि मनुष्य के पास यदि कोई सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु है तो वह उसका 'जीवन' है। तो वह जीव, वह प्राण, किस के लिए खपायें ? ऐसा प्रयोजन काम का नहीं जिस के लिए हमने प्राण दिये, जीवन खपा दिया तो हमें अथवा औरों को पछतावा हो, पश्चात्ताप हो। जिसके लिए बाद में पछतावा न हो ऐसा प्रयोजन क्या हो सकता है ? 'द लिबरेशन ऑफ

मैनकाइंड'—मानव की विमुक्ति। समस्त मानवों का विमोचन। यही एक प्रयोजन हो सकता है। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। लेकिन जब मानवमात्र की स्वतंत्रता स्थापित करनी है तो परिस्थिति-परिवर्तन प्रत्येक मनुष्य की सम्मति से होना चाहिए। कम से कम सब लोगों की अनुकूलता तो होनी ही चाहिए। उस पर लेनिन क्या कहता है? वह कहता है कि यदि हम राह देखते बैठें कि स्वतंत्रता का अर्थ सभी मानव समझ लें और स्वतंत्रता के लिए सब अनुकूल हो जायं, तब तो समाजवाद कम से कम पाँच सौ वर्ष तक आने वाला नहीं है। उसकी आशा ही हम नहीं कर सकते। इसलिए फिर यह तय हुआ कि जिनके मन में स्वतंत्रता की उत्कंठा पैदा हुई हो और जिन्हें स्वतंत्रता के लिए छटपटाहट हो रही हो ऐसे लोग संगठित हों, औरों को मुक्त करें। ऐसे संगठित लोगों की जो संस्था होगी उसका नाम 'क्रांतिकारी दल' होगा। वह दल क्रांति लायेगा।

दल क्या है?

अब थोड़ा देखें कि 'दल' किसे कहते हैं। इसके लिए कुछ अध्ययन करना होगा। अध्ययन किसे कहते हैं? जो हमें मालूम है वह पक्का हो और बहुत सारा जो मालूम नहीं है वह होने लगे—यह अध्ययन है। अध्ययन का एक भाग ऐसा है जिसमें जो बातें समझ में नहीं आयी हैं उन्हें समझना होता है। बच्चा पहली कक्षा से दूसरी कक्षा में गया इसका अर्थ क्या है? पहले वर्ग में उसे जो कुछ आता था वह पक्का हुआ, और दूसरे वर्ग की जो बातें उसे नहीं आती थीं वह उसे सीखनी हैं। तो, दल का अर्थ क्या है? इसमें तीन शब्दों का अर्थ हमें ध्यान में रखना है। सम्प्रदाय यानी संगठित विचार, केवल विचार नहीं,

शुद्ध विचार नहीं। खालिस विचार मुक्त होता है। वह आकाश से भी व्यापक है। मनुष्य के विचार का कोई क्षितिज नहीं होता। उसे मर्यादा नहीं है। विचार ही मनुष्य है। विचार यानी अमुक कोई विचार नहीं, केवल विचार। विचार करने की मनुष्य की क्षमता। यह विचार जब संगठित होता है तब वह सम्प्रदाय बनता है। 'आइडियालाजी' बनता है। जब विचार अध्यात्म के क्षेत्र में संगठित होता है तो वह 'डिनामिनेशन', धर्मपंथ कहलाता है। अध्यात्म के क्षेत्र में विचार संगठित होता है तो वह धार्मिक सम्प्रदाय बनता है, पंथ बनता है। उसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी विचार संगठित होता है तो वह 'आइडियालाजी' में, विचारधारा में परिणत होता है। विचारधारा बनी कि विचार शेष नहीं रहता। विचार संगठित हुआ कि विचार खत्म हुआ। संगठित विचार यानी मृत विचार। यह विचार का शव है।

यह संगठित विचार जब आक्रमणशील होता है तो उसका नाम 'वाद' होता है। पहले विचार संगठित होता है और फिर वह जयिष्णु बनता है। जयिष्णु होता है यानी दूसरे विचारों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा उस विचार में दाखिल होती है। कोई विचार जब जयिष्णु होता है, आक्रमणशील बनता है तो दूसरे विचारों को जीतने के लिए आगे बढ़ता है। जब विचार में यह आकांक्षा पैदा होती है कि दूसरे विचारों का खंडन करना है, दूसरे विचारों को जीतना है, तब वह आक्रमणशील यानी हमलावर होता है। ऐसा जो आक्रमणशील विचार है उसका नाम 'वाद' है। यह ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि आज संसार में वादों की भरमार है, 'इज्मों' का युद्ध है।

और यह संगठित, विजिगीषु विचार जब सत्ताभिमुख होता है तब उसका नाम 'पक्ष' या 'दल' होता है।

सारांश, संगठित विचार संप्रदाय, या विचारधारा, आइडियालाजी है। आक्रमणशील संगठित विचार वाद है, 'इज़्म' है। और संगठित आक्रमणशील सत्ताभिमुख विचार पक्ष है।

इस पर से एक बात ध्यान में आयेगी कि संगठित विचार सम्यक्‌विचार का विरोधी है, घातक है। जहाँ संगठित विचार आता है वहाँ विचार बचता ही नहीं। 'इट इज ए कान्स्पिरेसी एगेन्स्ट द इंटलेक्ट'—मनुष्य की बुद्धि के खिलाफ़ रचा गया षड्यंत्र है संगठित विचार। और मनुष्य के विचार-परिवर्तन के खिलाफ रचा गया षड्यंत्र ही वाद है। वाद में विचार-परिवर्तन के लिए गुँजाइश नहीं है। विचार जब सत्ताभिमुख बनता है तब 'इट बिकम्स ए कान्स्पिरेसी एगेन्स्ट द पीपुल'—वह लोगों के खिलाफ रचा गया षड्यंत्र है।

कैसा तमाशा है देखिए। दल का आरम्भ विचार-स्वातंत्र्य की आकांक्षा से होता है। दल क्यों बना? हम लोग कहते हैं, हमारा विचार भिन्न है इसलिए हमने अलग दल बनाया। लेकिन दल में तो स्वतंत्र विचार के लिए गुँजाइश ही नहीं है। वहाँ विचार में अनुशासन है। हमने अलग दल क्यों बनाया? इसलिए कि हमें विचार-स्वातंत्र्य चाहिए। तो क्या मुझे विचार-स्वातंत्र्य है? नहीं है। तुम यदि मुझसे विचार-स्वातंत्र्य चाहोगे तो तुम्हें दल छोड़ना पड़ेगा या हम तुम्हें दल से निकाल देंगे। इसीलिए कहा गया—'इट इज़ ए कान्स्पिरेसी एगेन्स्ट द पीपुल'—जनसामान्य की बुद्धि के खिलाफ, बौद्धिक स्वातंत्र्य के विरुद्ध यह षड्यंत्र है। सहज प्रवाह में ये व्याख्याएँ मैंने प्रस्तुत कर दीं।

ट्राटस्कीवादियों का कथन

जब यह तय होता है कि मुट्ठीभर लोग संगठित हों और मानव को मुक्त करने का प्रयत्न करें तो क्रांति में दल मुख्य हो जाता है। क्रांतिकारी लोगों का संगठित समूह प्रमुख होता है। 'आर्थोडाक्स' यानी परम्परागत क्रांति का जो विचार है वह मैंने पहले जैसा था वैसा प्रस्तुत किया। अब देखें कि उस के बारे में क्या विचार करना है।

प्रश्न यह है कि यह षड्यंत्र क्या करता है, उसका हेतु क्या है। 'आइजैक डायसर' नामक एक लेखक है। वह 'नॉन-कॉनफर्मिस्ट' यानी भिन्न विचारवादी कम्युनिस्ट है। यानी ट्राटस्की का अनुयायी है। आज के तरुणों का जो साम्यवाद है, कम्युनिज्म है वह ट्राटस्की के ढंग का है। आज तरुणों का जो प्रचण्ड आन्दोलन संसार में हो रहा है उसका रुख ट्राटस्की की तरफ है। उसका प्रभाव यहाँ पड़ता है इसलिए मुझे यह सब बताना पड़ा है। तरुणों के जो आंदोलन, विद्यार्थियों के जो आंदोलन यूरोप और अमरीका में चलते हैं उनकी प्रतिध्वनि हमारे देश में उठती है। उनका थोड़ा सा, रुझान माओ की ओर है ही। परन्तु ट्राटस्की की ओर भी है। यह डायसर क्या कहता है? हम मार्क्सवादियों को यह करना है कि 'द आइडियल ऑफ मार्क्सिज्म इज़ दैट क्लासलेस सोसाइटी इन विच वॉयलेन्स शुड सीज़ टु बी, एंज़ ए नेसेसरी एण्ड परमानेंट ईविल इन ह्यूमन रिलेशनशिप'—मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धों में हिंसा का एक शाश्वत और अपरिहार्य स्थान है; जिस वर्गहीन समाज में यह न हो ऐसा वर्गहीन समाज हमारा ध्येय है। हमें ऐसा समाज स्थापित करना है जिसमें मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धों में एक शाश्वत और अपरिहार्य तत्त्व के रूप में हिंसा बिल्कुल न

रहेगी। डायसर ने हमारे सामने यह कोई सर्वोदय के साध्य के रूप में नहीं रखा है, मार्क्सवादी क्रांतिकारी के ध्येय के रूप में रखा है। वर्गहीन समाज यानी हिंसानिरपेक्ष समाज। इस मामले में सभी मार्क्सवादी एकमत हैं।

फिर हिंसा क्यों ?

फिर हम हिंसा क्यों करते हैं ? यह प्रश्न उस लेखक ने ही उठाया है। उनकी भूमिका हमें समझ लेनी चाहिए। समझना इसलिए चाहिए कि जो सशस्त्र क्रांतिकारी हैं वे भी कोई रक्तपिपासु हत्यारे नहीं हैं। वे कोई खूनी नहीं हैं। बंगाल के नकसलाइट नेता ने हमारे एक मित्र से कहा—'डू यू थिंक वी आर मर्डरर्स ?' हम क्या खूनी हैं ? क्या हम इन्सान के खून के प्यासे हैं ? आप क्या समझते हैं ? हम क्रांतिकारी हैं, खूनी नहीं। फिर हम हिंसा किसलिए करते हैं ? 'वॉयलेन्स इज ए नेसेसरी ईविल,' हिंसा एक ऐसा पाप है जो अपरिहार्य है, आवश्यक है। इसलिए हमें हिंसा करनी पड़ती है। हममें क्रांति की तड़प है, बहुजन की दुःस्थिति हमसे देखी नहीं जाती, समाज-परिवर्तन के बारे में अब धीरज नहीं रखा जाता, इसलिए करनी पड़ती है। हम आततायी नहीं हैं। तो यह हिंसा अपरिहार्य पाप है, 'नेसेसरी ईविल' है।

तो, इस बारे में यह लेखक क्या कहता है ? हमें आपद्धर्म के रूप में, लाचारी से हिंसा का अवलंबन करना पड़ता है। यह नौबत जब-जब आती है तब हम को भी इस बात का भान रहना चाहिए और जो हमारे साथ शामिल हैं उन साथियों को भी बताना चाहिए कि यह अपरिहार्य है और पाप है। इसमें जोर—'एंफ़ेसिस'—अपरिहार्यता पर ही नहीं, पाप पर भी है। यह अपरिहार्य है और पाप भी है। यह भान होने

से क्या होगा ? होगा यह कि पाप कभ हो ऐसी इच्छा रहेगी। अपरिहार्य है, लाचारी है और पाप है। यह दवा कड़वी है, लेकिन लिये बिना चारा नहीं है। इसमें मनुष्य की मनोवृत्ति क्या होती है ? दवा लेता हूँ, लेकिन लेने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। फिर शराब के बारे में ? या सिगरेट के बारे में क्या ? मान लीजिए, बीमार के लिए सिगरेट दवा के रूप में बताया गया है, वह अपरिहार्य है, इसलिए बुरा लगे तो भी हर्ज नहीं। फिर क्या होता है ? सिगरेट की लत लगती है। यानी उसमें जो दोष है, जो 'ईविल' है उसकी ओर ध्यान रहता नहीं, केवल अपरिहार्यता का ही ध्यान रहता है। यही आज तक क्रांति के बारे में हुआ है। 'ईविल' पर जोर नहीं, 'नेसेसरी' पर है। तेरी जान लिये बिना चारा नहीं है और मन में भी तेरी जान लेने की इच्छा होती है। यहाँ हिंसा अच्छी लगने लगती है। यह बड़ा फर्क है।

क्या युद्ध जरूरी है ?

युद्ध क्या मानव-जीवन में जरूरी है ? क्या मनुष्य की संस्कृति के विकास के लिए युद्ध आवश्यक है ? यह आज के संसार का सांस्कृतिक प्रश्न है ? प्राचीन काल में धार्मिक लोगों ने माना था कि युद्ध से, धर्मयुद्ध से, मनुष्य की प्रगति होती है। कई क्रांतिकारियों ने भगवद्गीता में से वह अर्थ भी निकाला है। आज तक संसार के किसी भी भूभाग के धर्म-प्रवर्तक ने युद्ध की निंदा की हो यह मुझे नहीं मालूम। शस्त्र की निंदा एक प्रसंग में की है केवल ईसा ने। 'जो तलवार हाथ में लेगा उसका नाश तलवार से ही होगा'—यह एक ही वाक्य है उसका। उस वाक्य का भी जोर आगे घटा दिया है, सारा सत्त्व निकाल लिया है। 'सीज़र अलग है और गॉड अलग है;

ईश्वर अलग है और राजा अलग है। जो राजा का है वह राजा को दो और जो ईश्वर का है वह ईश्वर को दो।' यानी ईश्वर आसमान में ही रहा और इस पृथ्वी पर केवल राजा रहा। इसलिए ईसा के कुल तत्त्वज्ञान में युद्ध का निषेध आ नहीं सका। मैं समझता था कि बौद्ध और जैन दर्शनों में युद्ध का निषेध आया होगा। लेकिन सभी बौद्ध और जैन धर्म के बड़े-बड़े प्रवक्ताओं ने कहा है कि हमारे धर्म में शौर्य का स्थान है। पर मुझे आपसे यह कहना है कि शौर्य अलग है और युद्ध-वरिता अलग है।

हमारा प्रयत्न

मनुष्य के विकास के लिए युद्ध की आवश्यकता है यह माननेवाला फ़ासिस्ट है, भले ही वह मार्क्स का अनुयायी हो या कोई और हो। युद्ध से मानव का विकास हो सकता है यह जो भी मानता होगा वह युद्ध को 'ईविल' नहीं मानता। लेकिन यह कम्युनिस्ट क्या कहता है ? 'वह अपरिहार्य है, लेकिन पाप है।' अपरिहार्यता से अधिक जोर पाप पर होना चाहिए। इस पाप की अपरिहार्यता कैसे मिटायी जाय यह क्रांति की खोज है। क्योंकि हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं उस समाज में हिंसा नहीं रहेगी, यह हमारी प्रतिज्ञा है। तो क्रांति की प्रक्रिया में, क्रांति के प्रयत्न में, हिंसा अपरिहार्य न हो यह हमारा प्रयत्न हीना चाहिए।

हमारी प्रगति की यह दिशा है। इसके लिए अब क्रांति की प्रक्रिया में क्रांति करनी होगी। आज की तरुणाई की यह शान है। आज का जो तरुण है उसकी तरुणाई की यह शान है। उसकी शान युद्ध के या रणभूमि के शौर्य में अब नहीं है। समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में से हिंसा को किस तरह निकाल

फेंका जाय इसका अध्ययन, इसकी खोज और इसका प्रयोग आज के तरुणों की शान है ।

अपने देश तक की ही बात करनी हो तो परम्परावादी मार्क्सिस्ट पक्ष सब एक ओर हैं और समाजवादी पक्ष दूसरी ओर है। समाजवादी पक्ष की समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में हिंसा को स्थान नहीं है, लोहियावाली में भी नहीं, गोरेवाली में भी नहीं। कोई भी समाजवादी पक्ष हो उसे समाज-परिवर्तन तो चाहिए, लेकिन हिंसा नहीं चाहिए। यह नया, आधुनिकतम समाजवाद है। इसे कहते हैं लोकतांत्रिक समाजवाद। यह लेटेस्ट है—'साइंटिफिक सोशलिज्म'।

मानवीय जीवन से हिंसा का समूल उच्छेद करने का ध्येय सामने होते हुए भी अपरिहार्य रूप से ही क्यों न हो, क्रांतिवादियों को हिंसा का अवलम्बन क्यों करना पड़ा? निश्चित ही उन्हें हिंसा करने का शौक नहीं रहा होगा। तो फिर इन मुट्ठीभर लोगों को हिंसा क्यों करनी पड़ी? उन्होंने यह तो नहीं माना है कि युद्ध मनुष्य की प्रगति के लिए आवश्यक है। यह भी नहीं माना है कि शौर्य चाहिए तो युद्ध चाहिए ही। तो फिर ये लोग हिंसा क्यों करते हैं? वे लोग जो हिंसा करते हैं उसे निश्चित रूप से युद्ध नहीं कहा जा सकता। वे लोग फिर सशस्त्र विद्रोह क्यों करते हैं? यह प्रश्न है। इसका एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण है।

क्रांतिकारी आदर्शवादी हैं

क्रांतिकारी आदर्शवादी होता है। वह चाहे जितना व्यवहारवादी हो, फिर भी बहुत कुछ आदर्शवादी होता है। वर्तमान समाज से कई कदम वह आगे होता है। नहीं तो वह क्रांतिकारी हो ही नहीं सकता। समस्त क्रांतिकारियों को आशा

क्या थी ? हिंसा कम से कम करनी पड़ेगी। क्योंकि बहुजन हमारे पीछे रहेंगे। बहुसंख्यक लोगों को क्रांति की आवश्यकता है। नव्वे प्रतिशत लोग, कम से कम अस्सी प्रतिशत लोग तो गरीब हैं, दुखी हैं, दीन हैं। ये जो अस्सी प्रतिशत दीन-दलित हैं, उन्हें क्रांति की जरूरत है। वे हमारे साथ रहेंगे। अस्सी फी-सदी लोगों का इतना विशाल जनसमूह जब हमारे साथ है, तो कितनी हिंसा करनी होगी ? नाममात्र की, कम से कम हिंसा से काम चल जायगा। और ऐसा इतिहास में हुआ भी है।

बड़ा मजेदार संजोग है यह। रूस में बोल्शविक क्रांति हुई। उस क्रांति में कितने लोग मरे, कल्पना है आपको ? प्रत्यक्ष क्रांति में केवल दस व्यक्तियों को जान खोनी पड़ी, बस। इतनी अल्पमात्रा में हिंसा संसार की किसी भी क्रांति में नहीं हुई। सशस्त्र क्रांति में तो नहीं ही। इसका सयुक्तिक कारण क्या कहा जाय ? क्यों ऐसा हुआ ? इसका कारण यह है कि जब बहुजन समाज क्रांति के निमित्त, लाचारी के रूप में हिंसा करने पर उतारू होता है तब उस दहशत से ही क्रांति हो जाती है। प्रत्यक्ष हिंसा विशेष रूप से करनी नहीं पड़ती। 'द थ्रैट ऑफ वॉयलेन्स'—हिंसा की दहशत, हिंसा की भीति। यह जो हिंसा की भीति का जोर है उसके कारण प्रत्यक्ष हिंसा का अवसर आता नहीं और क्रांति हो जाती है।

गरीब क्रांतिकारी नहीं

रूस की क्रांति इतनी कम हिंसा से हुई, तो आगे क्रांति के बाद उसकी पूर्णता के लिए स्टालिन को इतने अधिक परिमाण में हिंसा क्यों करनी पड़ी ? इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। बहुसंख्यक लोग क्रांतिकारी नहीं होते। उन्हें क्रांति की आव-

श्यकता थी, लेकिन उनमें उसकी आकांक्षा नहीं थी। हमें क्रांति की प्रक्रिया का अध्ययन करना है इसलिए थोड़ी गहराई में जाना पड़ रहा है। जिनके लिए क्रांति की गयी, वे क्रांतिकारी नहीं थे। गरीब आदमी क्रांतिकारी नहीं होता। उसे समाज-परिवर्तन चाहिए, पर क्रांति नहीं। इसका अर्थ क्या है? गरीब अमीर होना चाहता है, लेकिन उसे क्रांति नहीं चाहिए। इसलिए गरीब और अमीर की मनोभूमिका में मूलभूत अन्तर नहीं है। हाँ, परिस्थिति में अन्तर है। बाह्य भूमिका में फर्क है। पर दोनों की मनोभूमिका में फर्क नहीं है। गरीब क्या कहता है? मुझे अमीर होना है। 'अरे, अमीर शैतान है ना? क्या तुम भी शैतान बनोगे? अमीर राक्षस है ना? रक्त चूसने वाला है ना? वह शोषक है, एक्सप्लायटर है, चूसनेवाला है। तो क्या तुम्हें शैतान बनना है? राक्षस बनना है?' गरीब से यह पूछा जाय तो वह निरुत्तर हो जायगा। क्योंकि किसी भी गरीब ने अमीर को सचमुच शैतान नहीं माना। माना होता तो वैसा खुद बनने की इच्छा उसे हुई न होती।

गरीब की आकांक्षा

यह बड़ा मूलगामी विचार है। यह जो 'क्लास' का विचार है, वर्गों का विचार है उसकी नींव ही खिसका देनेवाला यह विचार है। दो वर्ग क्या हैं? बाह्य परिस्थिति है। दो वर्ग मनःस्थिति की दृष्टि से नहीं हैं। मालिक और मजदूर ये यदि दो वर्ग हैं तो उनकी मनोभूमिकाएँ भिन्न होनी चाहिए। मनो-भूमिकाएँ एक-दूसरे के बारे में भिन्न हैं, लेकिन मूल में भिन्न नहीं हैं। यह जो अमीर बनना चाहता है उसे भी सम्पत्ति चाहिए, उसे भी स्वामित्व चाहिए। अमीरी की आकांक्षा प्रत्येक गरीब के मन में है और गरीबी का डर हर अमीर को

है। इसका परिणाम क्या हुआ है ? मन से दोनों कपटी हो गये हैं। खालिस, निष्कलुष, स्वच्छ मन दोनों के नहीं हैं। इसीलिए यह गरीब आदमी क्रांतिकारी नहीं हो सका।

अर्थात् यह जो किसान और मजदूर है, जिसके लिए क्रांति हुई, वह चूंकि मन से क्रांतिकारी नहीं है, इसलिए स्टालिन को जबरदस्ती करनी पड़ी, व्यापक मात्रा में हिंसा करनी पड़ी। मैंने जो लेनिन का वाक्य कहा था—'इस का मन :— परिवर्तन होने तक हमें राह देखनी पड़े तो पांच सौ वर्ष रुकने पर भी कोई लाभ नहीं होगा, इसलिए रुकना संभव नहीं, उचित भी नहीं।' वही कारण है कि यह अधीर मनुष्य व्यापक हिंसा करने लगा। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि जोर-जबर-दस्ती से दहशत पैदा होती है। आतंक उत्पन्न होता है। पर दहशत क्रांति नहीं है। साम्यवादी क्रांतिकारियों के सूत्र मैं बता रहा हूँ। ये मेरे अपने सूत्र नहीं हैं। 'टेररिज्म इज नाट रेवोल्यूशन'—दहशत क्रांति नहीं है। जिस बहुजन-समाज के लिए, जिन बहुसंख्यक लोगों के लिए आप क्रांति करना चाहते हैं वे यदि भयभीत हैं, घबड़ाये हैं, उनके पैर यदि लड़खड़ाते हैं तो क्या होगा ? और क्रांति हो भी जायगी तो किसकी वह क्रांति होगी ? उसकी होगी जो औरों को अपने कड़े शासन में रख सकते हैं। वह लोकक्रांति नहीं होगी। क्योंकि उसमें डंडे का शासन चलेगा।

कम्युनिस्ट पार्टी में दो भेद हैं—मार्क्सिस्ट और लेनिनिस्ट। लेनिनिलेस्ट तो माओइस्ट ही हैं। मार्क्सिस्ट लेनिनिस्टों को अड्वेंचरर्स यानी साहसवादी कहतेहै। वे दहशतवादी हैं, आतंक-वादी हैं। उन्हें टेरर चाहिए। वे दहशत पैदा करना चाहते हैं, ये कोई क्रांतिकारी नहीं हैं।

उनका दूसरा सूत्र है—'इन्सरेक्शन इज नॉट रेवोल्यूशन'। 'इन्सरेक्शन' का अर्थ है सशस्त्र विद्रोह। सशस्त्र विद्रोह में बहुजन-समाज शामिल नहीं हो सकता। सशस्त्र क्रांति अलग है और सशस्त्र विद्रोह अलग। मुट्ठीभर लोग शस्त्रप्रयोग कर, औरों को डरा-धमका कर जो समाज-परिवर्तन करते हैं वह सशस्त्र विद्रोह है। उसमें बदल है, परिवर्तन है, पर क्रांति नहीं है। कल्पना कीजिए कि यूरोप के महायुद्ध में हिटलर जीत जाता, तो भले समाज-परिवर्तन होता, पर क्रांति नहीं होती। या बोल्शविक क्रांति के समय लेनिन हार जाता और ज़ार जीतता तो समाज-परिवर्तन हुआ होता और क्रांति नहीं हुई होती। यह हमें ध्यान में रखना चाहिए। सारांश, टेररिज्म क्रांति नहीं है, दहशतवाद क्रांति नहीं है और सशस्त्र विद्रोह भी क्रांति नहीं है।

नया विचार

तो आज का, इस बारे में नया विचार क्या है? आज जो क्रांतिकारी है, वह क्या कहता है? तीन-चार पुस्तकें इन तरुणों की लिखी हुई हैं। उन के केवल सूत्र बताता हूँ। 'एक्ट, एक्ट विदाउट डिले। नॉट फार द पीपुल, बट विद द पीपुल।' क्रांति करो, फौरन करो। अब देर न करो। लेकिन क्रांति लोगों के लिए नहीं, लोगों के साथ करो। लोगों के पुरुषार्थ के लिए क्रांति में अवकाश संभव होना चाहिए। क्रांति की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए।

अब निष्कर्ष क्या निकला? संदर्भ-परिवर्तन के लिए भी हृदय-परिवर्तन चाहिए। पहले हृदय-परिवर्तन कि पहले संदर्भ-परिवर्तन? यह सवाल ही बिल्कुल गलत है। ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ ही साथ चलनी चाहिए और एक दूसरी की पोषक होनी

चाहिए। क्रांति के प्रयोग में, क्रांति की प्रक्रिया में संदर्भ-परिवर्तन का और हृदय-परिवर्तन का अवसर होना चाहिए। यानी क्रांति में एक नया आयाम, एक नया 'डायमेन्शन', एक नया परिमाण दाखिल हुआ है। यह प्रगति है। क्रांति के तंत्र की प्रगति यहाँ तक हुई है कि हृदय-परिवर्तन और संदर्भ-परिवर्तन मूल्य-परिवर्तन के लिए है। हृदय-परिवर्तन और संदर्भ-परिवर्तन साथ-साथ सधना चाहिए। एकसाथ एक ही समय ये दोनों प्रक्रियाएँ होनी चाहिए। यह निष्कर्ष है। और यह निष्कर्ष हमने गांधी-विनोबा के कथनों के आधार पर नहीं, समाजवादियों और साम्यवादियों का जो विचार है उस विचार के आधार पर निकाला है। तो यह जो क्रांति की नयी प्रक्रिया है उसका संशोधन करना है, उसका प्रयोग करना है। अब हम इस बात का विचार करेंगे कि उसका स्वरूप क्या हो सकता है।

पाँच

○

क्रांति की नयी प्रक्रिया

० ० ०

प्रश्न यह है कि स्वातंत्र्यप्राप्ति के पहले, यानी स्वतंत्रता के लिए जब संघर्ष चल रहा था, तब हमारे देश में एक प्रकार की राष्ट्रीय एकता दिखाई देती थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद, आज वह एकता टूट गयी है ऐसा अनुभव हो रहा है। तो इस देश में एकात्मता की, राष्ट्रीयता की भावना का फिर कैसे निर्माण हो ?

इसके बारे में, हमें यहाँ से विचार करना होगा कि राष्ट्री-

यता क्या है। राष्ट्रीयता की पुरानी कल्पना आज गतकालीन हो चुकी है। उस राष्ट्रीयता का नाम था राष्ट्रवाद। हर एक देश अपनी शक्ति बढ़ाये, अपनी दौलत बढ़ाये और सारे संसार पर भले ही अपना वर्चस्व कायम न कर सके तो भी अपना प्रभाव संसार पर डाल सके, संसार को उससे भय लगे ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना पुराना उन्नीसवीं सदी का राष्ट्रवाद है। इस पुराने राष्ट्रवाद का परिपाक साम्राज्यवाद में हुआ और उसकी ही कोख से, लेकिन मूल नक्षत्र में समाजवाद का जन्म हुआ।

उस समाजवाद ने पुराने राष्ट्रवाद को नकार दिया। यह पुराना राष्ट्रवाद पूँजीवाद के साथ, पूंजीवाद के जुड़वे भाई के रूप में जन्मा था। उस पुराने राष्ट्रवाद का निषेध आधुनिक क्रांतिकारियों ने किया है, केवल अर्वाचीन दो प्रमुख व्यक्तियों—हिटलर और मुसोलिनी—को छोड़कर। मुसोलिनी और हिटलर ये दोनों फासिज़्म (फाशीवाद) और नाज़िज़्म (नाज़ीवाद) के आद्य प्रवर्तक थे। फासिज़्म और नाजिज़्म इन दो शब्दों का विनोबाजी ने मराठीकरण किया है—फाशीवाद (फाँसीवाद) और नासीवाद (विनाशवाद) इन दो विचारधाराओं को छोड़ संसार के किसी भी व्यक्ति को यह पुराना राष्ट्रवाद मान्य नहीं है और वह आज अव्यावहारिक भी सिद्ध हो गया है। वह अव्यावहारिक हुआ है इसका एक ही प्रमाण यह है कि आज कोई भी देश अपनी मर्जी से युद्ध शुरू नहीं कर सकता, न ही युद्ध समाप्त कर सकता है। यानी अकेले की जिम्मेदारी पर। वैसी परिस्थिति आज संसार में रही नहीं है। कोई भी देश आज स्वयंपूर्ण नहीं है, सार्वभौम नहीं है। राष्ट्र-राष्ट्र के बीच एक परस्परावलंबन आ गया है।

कई देश अत्यन्त परावलंबी हैं, इसलिए आर्थिक दृष्टि से वे गुलाम हैं। परन्तु जो आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हैं वे भी पूर्णरूप से स्वावलंबी नहीं हैं। हमारा देश उस तरह का गुलाम देश है, क्योंकि परावलंबी है। आज ऐसी परिस्थिति है कि संसार के किसी भी एक देश पर कोई प्राकृतिक संकट आता है तो संसार भर से मदद आती है। इसलिए यदि किसी को ऐसा लगता हो कि वह पुराना राष्ट्रवाद पुनः इस देश में हम पुनरुज्जीवित कर सकते हैं, तो यह मानना होगा कि वे कम से कम सौ साल पहले के जमाने में जी रहे हैं।

राष्ट्रीयता की आज की व्याख्या

तो राष्ट्रीयता का अर्थ क्या है? उसका एक लक्षण मैंने अंग्रेजी में कई बार बताया है, क्योंकि ये कल्पनाएँ बहुशः पश्चिम से आयी हैं। पश्चिम से आयीं हैं तो ऐसा न मानें कि वे जागतिक नहीं हैं। जब हम यह कहते हैं कि विवेकानन्द ने हिन्दूधर्म की पताका अमरीका में फहरायी तो उसका अर्थ यही होता है कि हिंदूधर्म कोई केवल पूर्व का नहीं है, संसार का धर्म है। या जब हम यह कहते हैं कि गांधीजी के विचार संसार को मानने होंगे तब वे किसी एक देश के विचार नहीं रह जाते हैं। इसका कारण यह है कि पूर्व और पश्चिम सब कोरी कल्पना है। वास्तविकता नहीं, रियालिटी नहीं। जापान जाने के लिए निकला आदमी कुछ और आगे चला जाता है तो पश्चिम जा पहुँचता है। और इधर अमरीका या इंग्लैण्ड के लिए निकला आदमी थोड़ा आगे जाता है तो जापान पहुँच जाता है। पृथ्वी गोल होने के कारण पूर्व पश्चिम आदि सब औपाधिक हैं। इसलिए यदि राष्ट्रीयता की यह कल्पना पश्चिम से आयी है तो भी उसका बहिष्कार करने का कोई कारण

नहीं है।

राष्ट्रीयता की आधुनिक कल्पना क्या है ? अब वह राष्ट्रवाद नहीं रहा, वह राष्ट्रीयता है; 'नैशनलिज्म' नहीं, 'नेशनालिटी' है। उस राष्ट्रीयता का अर्थ क्या है ? 'द एग्जिस्टेन्स ऑफ ए नेशन इज ए डेली प्लेबिसाइट'—राष्ट्र अस्तित्व में है इसका अर्थ यह है कि मानों लोगों का प्रतिक्षण सार्वमत लिया जा रहा है। उसका उदाहरण दिया गया है—'जस्ट एंज् द एग्जिस्टेन्स ऑफ एन इंडिविजुअल इज् ए कंटिन्युअल अफर्मेशन आफ द विल टु लिव ।' प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ जीने का संकल्प व्यक्त होता है और इसी का नाम जीवंतता है। मनुष्य जीता है यानी क्या है ? यह कि हर श्वासोच्छ्वास के साथ वह संकल्प करता है कि मैं जीऊंगा। यह संकल्प वह समझ-बूझ कर, बुद्धिपूर्वक करता होगा ऐसा नहीं है। वह होता रहता है। उसी प्रकार जिस देश के लोग एक-दूसरे के साथ रहना चाहते हैं और एक-दूसरे के साथ रहने का संकल्प करते हैं, उस देश में राष्ट्रीयता है। वे एक भूमि पर रहते हैं, इतनी ही राष्ट्रीयता नहीं है। एक-दूसरे के साथ रहने की आकांक्षा, एक-दूसरे के साथ रहने का संकल्प राष्ट्रीयता है।

भारतीय राष्ट्रीयता

इस राष्ट्रीयता का आधार क्या है ? यह कि भूमि पर रहनेवाले लोगों में एक-दूसरे के साथ रहने का संकल्प होना चाहिए। दूसरी बात यह कि यदि हम यथार्थ भारतीय राष्ट्रीयता निर्माण कर सके तो उस भारतीय राष्ट्रीयता में और विश्वनिष्ठा में कोई गुणात्मक अंतर नहीं रहेगा। उनमें साधर्म्य है। वह क्यों है ? हमारे देश में जितनी विविधताएँ हैं उतनी संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है। समूचे संसार में जो

विविधताएँ हैं, उन विविधताओं के सभी प्रकार अपने देश में हैं। काले-गोरे का भेद है, आदिवासी और नागरिक का भेद है, ब्राह्मण-भंगी का भेद है, भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं, विभिन्न सम्प्रदाय हैं, पोशाक के, रहन-सहन के अनन्त प्रकार हैं। मलाबार का मोपला और काश्मीर का मुसलमान एक ही धर्म के हैं, लेकिन उनका रंग एक-सा नहीं, उनका खाना-पीना भी एक-सा नहीं है। इतने भेद संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे। और इतना बड़ा आकार ! पैंसठ करोड़ लोग ! जनसंख्या में हमसे बड़ा केवल एक चीन ही है। लेकिन जितने भेद हमारे देश में हैं उतने चीन में नहीं हैं। इसीलिए 'आरनाल्ड टायनबी', संसार का विश्रुत प्रमुख इतिहासकार कहता है—'इंडिया इज ए होल वर्ल्ड ऍट क्लोस्ड क्वार्टर्स'। रेल्वे स्टेशन के थर्ड क्लास—(अब सेकेंड क्लास)—वेटिंग रूप में लोगों की जो भीड़ रहती है उसमें अनेक प्रकार होते हैं। उसी तरह संसार के समस्त मनुष्यों के नमूने छाँट कर भगवान् ने एक जगह रख दिये हैं और उसका नाम भारत है।

सम्प्रदाय का निराकरण

इसलिए यदि हम भारत में राष्ट्रीयता का निर्माण कर सके तो जागतिक भावना भी दूर नहीं है। हम पहले भारतीयता का विचार करें, बाद में संसार को लें, ऐसा कहने का कारण नहीं है। भारतीय एकता का विचार ही जागतिक एकता का विचार है।

पहले मैंने चार अन्तराय बताये थे। अमीरी-गरीबी का भेद सर्वविदित है और सब चाहते हैं कि वह मिटना चाहिए। लेकिन हिन्दू-मुसलमान भेद कैसे मिटेगा ? इसके दो उपाय हैं। एक यह कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई,

बौद्ध आदि में से सम्प्रदायवाद का निराकरण होना चाहिए। सम्प्रदायवाद के निराकरण के लिए सम्प्रदाय निराकरण ही अनिवार्य होगा ।

सम्प्रदाय का लक्षण और निराकरण

सम्प्रदाय के लक्षण क्या हैं ? वह हमेशा औरों को अपने में शामिल करने को आतुर रहता है, उत्कंठित रहता है, उत्सुक रहता है। दूसरे लोग हममें मिल जायँ, इसका बराबर प्रयत्न रहता है। अंग्रेजी में इसे 'ओसिलिटाइजेशन' कहते हैं। जो स्वीकारा जा सके वह सम्प्रदाय है। जिसमें जीया जाता है। कोई भी मुसलमान बन सकता है, सिख बन सकता है, बौद्ध बन सकता है। अम्बेडकर के अनुयायी बौद्ध बने।

संप्रदाय-निराकरण का अर्थ क्या है ? धर्मपरिवर्तन रद्द होना चाहिए। इस देश में धर्म-परिवर्तन नहीं होना चाहिए। राजगृह सर्वोदय सम्मेलन के समय विनोबाजी ने इसमें एक नयी बात और जोड़ दी—'जन्मतः किसी का कोई धर्म ही नहीं होना चाहिए।' जिसकी कोख से जन्म हुआ वह उसी धर्म का है—ऐसा नहीं होना चाहिए।

यह सम्प्रदाय-निराकरण कैसे होगा ? इसके लिए पहला उपाय यह है कि धर्मपरिवर्तन बंद होना चाहिए। कानून से बंद किया जा सकता हो तो बंद किया जाना चाहिए। दूसरा, जन्म से किसी का कोई धर्म नहीं माना जाना चाहिए। और तीसरा, जिसे 'पर्सनल ला' कहते हैं, मनुष्य के नागरिकत्व के व्यवहार का जो कानून है, वह सब के लिए समान होना चाहिए। हिंदू दो पत्नियाँ नहीं कर सकता और मुसलमान चार पत्नियाँ कर सकता है—ऐसा कानून ठीक नहीं है। सब के लिए एक ही कानून होना चाहिए। ये तीन बातें आवश्यक

हैं और यह तरुणों का काम है।

तरुणों के खिलाफ शिकायत

लेकिन तरुण ही प्रतिगामी आन्दोलन करते हैं, यह मेरी शिकायत है। तुम तरुण लोग पुच्छप्रगति कर रहे हो। पुराने गुजरे जमाने में लौट रहे हो। राष्ट्रीयता-विरोधी जितने भी आंदोलन हैं उन सब का नेतृत्व कालेज के तरुणों के हाथ में है। उन्हें जागना चाहिए। पुराने लोगों की सभी पुरानी जीर्ण मान्यताएँ झकझोर देनी चाहिए। भावी संसार का चित्र देखना चाहिए। पुराने लोगों से एक ही चीज माँगो—आशीर्वाद। उनसे कहो कि आप की राय हमें नहीं चाहिए, आपका मार्गदर्शन हमें नहीं चाहिए, क्योंकि आपकी आँखें पीछे की तरफ हैं। उनसे यह हिम्मत के साथ कहना चाहिए। फिर हम इस देश में एक-राष्ट्रीयता निर्माण करेंगे। वह कैसे करना है, उसका निर्देश भी मैं कर चुका हूँ।

हिंदू-मुसलमानों की समस्या साम्प्रदायिक समस्या है। इसको हल करना है तो इसके अलावा और कोई मार्ग नहीं है। तीन उपाय—कामन सिविल ला, प्रोसिलिटाइज़ेशन की समाप्ति और जन्मतः जाति का निषेध। ये उपाय सरकार यदि करती नहीं है तो तरुणों को लोकमत के बल पर इन्हें अंजाम देने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक और उपाय

राष्ट्रीयता के मार्ग में दूसरा अवरोध है जाति। वह चुनाव में और चुनाव के बाहर भी है। जाति का मुख्य स्थान विवाह है। जाति का आरम्भ विवाह से होता है। जाति का लक्षण क्या है? जाति का एक प्रमुख लक्षण यह है कि वह जन्म के साथ आती है। दूसरा लक्षण, जाति में प्रवेशद्वार नहीं होता

है। जाति से बाहर होने का मार्ग अवश्य है। जाति में एक ही द्वार है—'एग्जिट' का, बाहर जाने का। भीतर जाने का एक ही द्वार है मां की कोख। इसका परिणाम क्या हुआ है? हिंदूसमाज से निर्यात ही निर्यात हुआ है, आयात हुआ ही नहीं। हमारे देश में जितने सम्प्रदाय हैं—मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध और जैन, सब सम्प्रदाय हिंदू धर्म में से निर्माण हुए हैं। इसलिए जब तक जाति है तब तक हिंदू समाज में राष्ट्रीयता का विकास होना सम्भव नहीं है। कोई कितना ही राष्ट्रीयता का उद्घोष करे, जो यह मानते हैं कि हिंदू मुसलमान से ज्यादा राष्ट्रीय है, उनसे एक ही बात कहनी है कि दूसरे के साथ रहने की वृत्ति ही राष्ट्रीयता है। इस भूमि पर रह रहे अन्य लोगों के साथ रहने की इच्छा। लेकिन जहाँ जाति है वहाँ यह संभव नहीं है।

जाति का महत्त्वपूर्ण लक्षण

जाति का तीसरा और अधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि मनुष्य से जो जितना दूर रहेगा वह उतना ही पवित्र होता है। ब्राह्मण पवित्र क्यों है? इस लिए कि वह औरों के हाथ का खाता नहीं है; ब्राह्मण पवित्र क्यों है? इसलिए कि वह दूसरे के साथ बैठता नहीं है। मनुष्य से वह जितनी दूर रहेगा उतना ही पवित्र है। यानी मनुष्यों में रहना ही नहीं है। परलोक गया कि पवित्र हुआ, पावन हुआ, जीवन कंचन हो गया। जिस समाज में जाति है, उस समाज में राष्ट्रीयता का विकास प्रलयकाल तक भी होनेवाला नहीं है, यह हमें ध्यान में रखना चाहिए।

फिर क्या करना होगा? जाति मिटानी होगी। वह कैसे मिटेगी? दस वर्ष तक एक ही जाति में विवाह नहीं होना

चाहिए। सजातीय विवाह बंद होने चाहिए। चुनाव वगैरे करो। काला-गोरा देखो। परख लो कि यह अनुरूप है या नहीं। यह सब करो, परन्तु जिस प्रकार सगे भाई-बहन का विवाह नहीं होता, उसी प्रकार एक ही जाति में जन्म लेनेवालों के बीच विवाह नहीं होना चाहिए। ऐसा कानून नहीं बनाया जा सकता हो तो वैसा वातावरण निर्माण करो।

विवाह की परिस्थिति बदले बिना जाति मिटनेवाली नहीं है। मित्रो, जो लोग यह कहते हैं कि वर्ण रहेंगे और जाति मिटेगी, वे लोगों को भ्रम में डाल रहे हैं। यह धारणा ही भ्रांतिमूलक है। इस भ्रांति का आप अपने मन से स्पर्श न होने दीजिए। भले यह कहनेवाला तिलक हो, गांधी हो, विनोबा हो या और कोई हो। हमारा सारा विचार स्वतन्त्र रहे, विभूति-निष्ठ नहीं। किसी का भी विचार हमें उधार नहीं लेना है। विचार स्वतन्त्र है। जाति मिट जायगी, वर्ण रह जायेंगे यह संभव नहीं है। जाति का आधार जन्म है। जन्म की परिस्थिति बदलनी ही चाहिए। वरना चुनावों में जाति आयेगी, राज्य में जाति आयेगी। जिनके लिए जाति लाभदायक होगी वे उसका संरक्षण करेंगे। महाराष्ट्र में ब्राह्मण को जाति पुसाती नहीं इसलिए वह जाति का निषेध करता है। वह चुनाव में खड़ा होगा तो कहेगा—'भाइयो, मैं ब्राह्मणकुल में जन्मा तो हूँ, पर मुझमें कोई ब्राह्मणत्व नहीं है। मेरे तो चोटी भी नहीं है, जनेऊ भी नहीं है।' वह यह समझाने का प्रयत्न करता है कि मैं आप लोगों के समान ही हूँ। और मराठा, कुनबी, माली आदि जो भी खड़ा होगा वह यही कहेगा कि हम बहुसंख्यक हैं इसलिए हमें वोट दो। जिसे जाति से हानि होती है, वह जाति से इनकार करता है और जिसे उससे लाभ होता है वह उसका

समर्थन ही नहीं, उद्घोष करता है। इसका निषेध और उसका समर्थन दोनों एक ही हैं। जाति-निराकरण के लिए यों ऊपर-ऊपर मलहम पट्टी करने से काम नहीं बनेगा। इसके लिए जड़ तक जाना होगा, पेट में औषधि लेनी होगी।

संप्रदाय का लक्षण क्या है? जो हमारे संप्रदाय में है वह हमारा है और जो हमारे संप्रदाय में नहीं है वह हमारा नहीं है। यह संप्रदाय का लक्षण है। इससे क्या हुआ? यहाँ का मुसलमान यह मानने लगा कि इस देश के गैर-मुस्लिमों की अपेक्षा विदेश का मुसलमान हमारे लिए अधिक नजदीक है। इसे 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियालिज्म' कहते हैं। भारत के बाहर रहने वाला गैरमुसलमानों की अपेक्षा उसे अधिक अपना लगता है, यह उसकी भावना है और यही संप्रदायवाद है।

नागरिकत्व से संबंध

नागरिकत्व और संप्रदायवाद में क्या संबंध है? मुसलमान का संप्रदायवाद भारतबाह्य है, भारतबाह्य निष्ठा उसमें है। 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियालिज्म' है। इसलिए कि बाहर का मुसलमान उसे यहाँ के गैरमुसलमान से ज्यादा निकट लगता है। उसकी यह निष्ठा मिटे बिना उसका भारतीयकरण हो नहीं सकता। और हिंदुओं से जातिसंस्था मिटे बगैर हिंदुओं का भारतीय-करण नहीं हो सकता।

हमारे देश में भाषा की समस्या जरा उलझी हुई है। दूसरे देशों की तरह नहीं है। दूसरे देशों में क्षेत्रनिष्ठ भाषाएँ हैं यानी वहां एक देश की एक भाषा है। ऐसा हमारे देश में नहीं है। यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है कि 'एक देश एक भाषा'। हमारे देश में भाषा का और लिपि का संबंध संप्रदाय के साथ भी हैं। हमारे देश की भाषा केवल क्षेत्रनिष्ठ नहीं, सम्प्रदायनिष्ठ

भी है। उदाहरण के लिए उर्दू को लें। उर्दू भाषा मुसलमानों की भाषा होने का कोई कारण नहीं है। फ़ारसी, अरबी शब्द मुसलमानों के साथ आये होंगे, लिपि उनके साथ आयी होगी। लेकिन इस कारण उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहना गलत है। मलाबार का मुसलमान उर्दू नहीं बोलता। तमिलनाडु के मुसलमान को उर्दू नहीं आती। ईरान के मुसलमान को, तुर्किस्तान के मुसलमान को, अफगानिस्तान के मुसलमान को उर्दू नहीं आती। ऐसी स्थिति में यह कितनी बड़ी भूल है कि उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहा जाय। लेकिन राजनीतिज्ञों में, 'महाराष्ट्र में उर्दू स्कूल नहीं चाहिए' कहने की हिम्मत नहीं है। भाषा में राजनीति को घुसने नहीं देना चाहिए। कल यदि मैं मुसलमान हो जाऊँ तो क्या मेरी भाषा उर्दू हो जायगी ? कोई यहूदी या पारसी मुसलमान बन जाय तो क्या उसकी भाषा उर्दू होगी ? जिन्ना साहब की पत्नी को ही नहीं, स्वयं जिन्ना को भी अन्त तक उर्दू नहीं आती थी। भाषा का सम्प्रदाय के साथ विवाह हम लोगों ने कर दिया है। उसका परिणाम यह हुआ है कि एक भाषा के दो-दो राज्य हो गये। दो बंगाल, दो पंजाब। उनकी भाषा एक ही है। फिर बचे हुए पंजाब के भी, भाषा के नाम पर दो टुकड़े और हुए—हरियाणा और पंजाब। गुरुमुखी भाषा है कि लिपि ? वह भाषा नहीं है, लिपि है। उर्दू भाषा है कि लिपि ? उर्दू लिपि है। रोमन लिपि है। रोमन लिपि कोई अंग्रेजी भाषा नहीं है। लेकिन 'अंग्रेजी हटाओ, अंग्रेजी हटाओ' चिल्लाने वाले रोमन अक्षरों पर कालिख पोतते हैं। रोमन लिपि में 'माधवराव देशपांडे' लिखें, 'दुग्धमंदिर' लिखें तो क्या वह अंग्रेजी हो गयी ? 'हेअर कटिंग सलून' नागरी में लिखें तो क्या वह

मराठी या हिंदी हो गयी ? पर क्या करें ? दिमाग से काम लेना ही नहीं है—ऐसा शिक्षित लोगों ने तय कर लिया है। तभी तो लिपि का झगड़ा शुरू हुआ है ! खैर।

यह भी उनके ध्यान में नहीं आया है कि नागालैण्ड और मेघालय आदि की लिपि रोमन है। वे अपनी भाषा रोमन लिपि में लिखते हैं। उर्दू इस देश की लिपि है। तो क्या कारण है कि रोमन ही इस देश की लिपि नहीं है ? भाषा अलग है, लिपि अलग है। लेकिन आज स्थिति क्या है ? एक भाषा के क्षेत्र में अन्य भाषाभाषियों को रहना नहीं चाहिए। एक भाषा के क्षेत्र में अन्य भाषा का कोई भी भाग नहीं होना चाहिए। कोई भी क्षेत्र नहीं रहना चाहिए। एक भाषा का क्षेत्र दूसरी भाषा का क्षेत्र न हो और एक भाषा के क्षेत्र में अन्य भाषीय न रहे—इसका अर्थ क्या है ? महाराष्ट्र में शुद्ध मराठी बोलने वाले, गुजरात में अमिश्र गुजराती बोलने वाले। पूर्वप्राथमिक से लेकर एम० ए० तक सारा शिक्षण मातृभाषा में पाये हुए भिन्न प्रांतीय सज्जन कर्म धर्म संयोग से यदि रेलगाड़ी में मिल गये तो इशारों के सिवा दूसरी भाषा के लिए गुंजाइश ही नहीं है। यानी ये जो सारे आंदोलन चलते हैं ये सब इसलिए कि हम एक दूसरे के साथ न रहने पायें। एक-दूसरे के साथ रहने का संकल्प अमल में न आने देना ही इन आन्दोलनों का अनभिव्यक्त उद्देश्य है।

करने योग्य तीन काम

इसके बारे में हम क्या कर सकते हैं ? तीन काम करने चाहिए। भाषा का सम्प्रदाय के साथ सम्बन्ध न रहे, सम्प्रदाय किसी का भी हो, कहीं का भी हो। जैसे ईसाई हैं, यहूदी हैं, बौद्ध हैं। इनके धर्म के साथ भाषा का या लिपि का सम्बन्ध नहीं है।

दूसरा, हम जिसे परायी भाषा कहते हैं, वह भाषा और उस भाषा की लिपि यदि हमारे देश में दाखिल हो गयी है, हमारे देश में उसकी जड़ें जम गयी हैं, वह भाषा केवल मुट्ठी भर लोगों में ही क्यों न हो, पर यदि एकता ला सकी हो, तो उस भाषा का बहिष्कार नहीं होना चाहिए। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा जो एकता लायी, वह एकता आधुनिक काल में अंग्रेजी भाषा इस देश में लायी। इसलिए—अंग्रेजी इस देश में बनी रहे या नहीं यह प्रश्न अलग है, वह परिस्थिति पर निर्भर है—लेकिन उसका बहिष्कार नहीं होना चाहिए। उत्तर भारत में अंग्रेजी का बहिष्कार न हो और दक्षिण में हिन्दी का बहिष्कार न हो। उत्तर के लोग 'अंग्रेजी हटाओ' न कहें और दाक्षिणात्य 'डाउन विथ हिन्दी' न कहें।

तीसरा काम, मातृभाषा से शिक्षण धीरे-धीरे मर्यादित होना चाहिए। एक या दो ही भाषाएँ सारे देश के शिक्षण का माध्यम बननी चाहिए। इस दिशा में हमें प्रगति करनी है।

मनुष्य की तीन विशेषताएं

मातृभाषा यानी क्या ? मनुष्य की कोई मातृभाषा होती है या नहीं, यह विवेचन मैं अब नहीं करूँगा। परन्तु मनुष्य के बारे में दो बातें हमें ध्यान रखनी हैं। मातृभाषा भी उसे सीखनी होती है; दूसरी भाषाएँ भी वह सीख सकता है और उसकी भाषा का भाषान्तर हो सकता है—ये मनुष्य की विशेषता है। मनुष्य और पशु के बीच ये तीन फर्क हैं, तीन भेद है। जिसे हम मातृभाषा कहते हैं वह भी सीखनी होती है, जन्म के साथ ही वह आती नहीं। यह पहली विशेषता है। दूसरे की भाषा वह सीख सकता है, यह दूसरी विशेषता है। और सब भाषाओं का भाषांतर हो सकता है, यह तीसरी

विशेषता है। ये तीन मनुष्य की विशेषताएँ हैं। इसलिए मातृ-भाषा के माध्यम के बजाय समूचे देश में एक या दो भाषाएँ शिक्षण का वैकल्पिक माध्यम बननी चाहिए।

यदि इस देश में एक राष्ट्रीयत्व निर्माण करना है तो एक और काम करना चाहिए। यह संपादी राष्ट्र हो, इसमें बहु-राष्ट्रवाद न हो। मित्रो, एक बात ध्यान में रखिए। संप्रदायवाद से 'डिनोमिनेशनल नेशनॅलिज्म', साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद पैदा हुआ है और भाषावाद से 'मल्टीनेशनॅलिज्म', बहुराष्ट्रवाद। जो हमारे लिए काम का नहीं है। एकराष्ट्रीयत्व यदि कायम करना है तो एक भाषा के कुछ क्षेत्र दूसरी भाषा के क्षेत्र में आग्रहपूर्वक रखने होंगे। उल्टी बात बता रहा हूँ। हमें यह आग्रह करना होगा कि बेलगांव कर्णाटक में ही रहे, क्योंकि भाषिक साहचर्य आवश्यक है। भाषिक संपर्क से भाषा का विकास होता है। और राष्ट्रीयता का भी विकास होता है। कन्नड़ बोलनेवाले और मराठी बोलनेवाले पुणे में भी साथ-साथ रहें और जैसे कन्नड़ का कुछ भाग महाराष्ट्र में रहे वैसे ही मराठी का कुछ भाग कर्णाटक में भी रहे। यह इंटिग्रेशन (एकीकरण) की दृष्टि से आवश्यक है। यह विचार सर्वोदय का नहीं है, यह फिर से मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए। किसी का भी विचार उधार मत लीजिए। सर्वोदय का नहीं, गांधी का नहीं, गीता का नहीं, बाइबल का नहीं। किसी का नहीं। विचार उधार लेना ही नहीं है। युवकों को बुद्धिनिष्ठ होना चाहिए, स्वयंप्रज्ञ होना चाहिए, तरुणों को स्वयं विचार करना चाहिए। परि-स्थिति का अध्ययन करना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बाधा

राष्ट्रीयता में बाधक चौथी बाधा है वंश। झारखंड, मेघा-

लय, आदिवासी आदि समस्याएं। इन आदिवासी लोगों का आखिर कहना क्या है ? यही कि हमारी अलग संस्कृति है। और मुझे यह निवेदन करना है कि अलग संस्कृति संसार में किसी की नहीं रहनी चाहिए। भारतीय नहीं, अभारतीय भी नहीं। अमुक की अलग संस्कृति है कहने का अर्थ क्या है ? क्या लंगोटी है ? क्या पगड़ी है ? इसका संरक्षण तो खुद तुम्हीं लोगों ने किया नहीं। किसको चाहिए उस संस्कृति का संरक्षण ? कुछ कलाएँ हैं, उन कलाओं का संरक्षण होना चाहिए। वैसे तो सभी कलाओं का संरक्षण होना चाहिए। और एक दूसरे की कला एक-दूसरे को सीखनी चाहिए।

आप लोगों को राजाजी की एक मजेदार बात बताता हूँ। राजाजी बड़े विलक्षण पुरुष थे। मैं अकसर कहता हूँ कि (अमात्य माधवाचार्य) विद्यारण्य स्वामी, आलिवर क्रामवेल, (विष्णुगुप्त) चाणक्य इनके मिश्रण से राजाजी का व्यक्तित्व बना है। एक बार रुक्मिणी अरुंडेल ने उन्हें एक नृत्य देखने का आमंत्रण दिया। राजाजी गये। वह बहन विदेश से आयी थी। इसलिए 'बाथ कास्च्यूम' में थी। आजकल सभी लड़कियां 'बाथ कास्च्यूम' में रहती हैं। उस बहन ने उसी पोशाक में नृत्य किया। नृत्य अत्युत्कृष्ट था अन्त में राजाजी से पूछा गया कि नृत्य कैसा लगा, तो वे बोले 'नृत्य अच्छा था' लेकिन उस बहन की पोशाक ठीक नहीं थी। वह पोशाक क्यों पहनी उसने ?' उत्तर देनेवाले को समर्थन करना था। वह जानता था कि राजाजी रामायण महाभारत आदि पर लिखा करते हैं। वह बोला, 'पुराणों में इस बात का प्रमाण है कि हमारे शिव-पार्वती भी ऐसा ही नृत्य करते थे।' राजाजी भी कोई कम नहीं थे। बोले—'भले आदमी, शिव-पार्वती प्रदर्शन के लिए नृत्य नहीं

करते थे। अपने आनन्द के लिए नृत्य करते थे और उसमें तल्लीन होते थे। साक्षात् उपभोग का जीवन था उनका।'

चार अन्तराय

भारत की एकराष्ट्रीयता के मार्ग में बाधक चार अंतराय यदि देश के तरुणों ने दूर नहीं किये तो राष्ट्रीयता का केवल नारा बुलंद करते रहने से कुछ होनेवाला नहीं है। मुसलमानों का संप्रदायवाद है तो उसके जवाब के रूप में हिंदुत्ववादी हिंदुओं का प्रति-संप्रदायवाद भी है। इन का जोड़ और गुणा करते रहने से संप्रदायवाद बढ़ेगा ही। इससे राष्ट्रीयता का विकास तो होनेवाला नहीं है। इस पर ध्यान हिंदुत्व के अभिमानियों ने नहीं दिया। हमें स्वतन्त्र, तटस्थ नागरिक की भूमिका से इन समस्याओं पर निरपेक्ष विचार करना चाहिए। हमारा अपना कोई आग्रह नहीं है। गांधी का भी आग्रह रखना नहीं है।

आज का शिक्षण व्यर्थ

एक और प्रश्न यह है कि आज का शिक्षण निरुपयोगी है तो वह बदले कैसे ? इसका उत्तर यही है कि इस शिक्षण का बहिष्कार करो। आज उल्टा चल रहा है। दाखिला लेने के लिए दौड़धूप चलती है। इसके लिए सिफारिश, उसके लिए रिश्वत। फिर परीक्षा में बैठने की भागदौड़। यानी बिना पढ़े, बिना मेहनत किये, परीक्षा में विशेष लिखे बिना भी पास होना है, यह आग्रह। इससे शिक्षण कैसे सुधरेगा ? इसलिए उल्टे चलो। बोल दो कि हम यह शिक्षण नहीं लेंगे। जब तक यह शिक्षण है तब तक शाला का बहिष्कार करो। पेपर आसान कराने के लिए बहिष्कार नहीं। यह शिक्षण ही निरर्थक है तो तुम लोग यह क्यों नहीं कहते कि यह शिक्षण हम लेंगे नहीं ? यह तय कर लो तो फिर एक सप्ताह में बदल जायेगा सारा

नश्शा। लेकिन आज का यह युवक उलटा ही बोलता है। उसे परीक्षा के बिना सर्टीफिकेट चाहिए और सर्टीफिकेट मिल गया तो 'जॉब' चाहिए।

इतना तो करो

मित्रो, सारा देश सरकारी नौकरों का कभी नहीं हो सकता। नहीं होना चाहिए। सारा देश सरकारी नौकरों का हो, क्या यह संभव है भी ? इसलिए एक ही उपाय है और मैं पक्का जानता हूँ कि वह उपाय तुम लोग करोगे नहीं। विद्यार्थियों के पालक तो परलोकवासी हो गये हैं। वे कहीं भी दिखाई नहीं देते बेचारे ! विद्यार्थियों की हड़ताल हो चाहे मोर्चा, मारामारी हो चाहे आगज़नी, पालक कहाँ है ? परलोक में है। पुलिस और विद्यार्थियों की मुठभेड़ होती है। एक तरफ पुलिस, दूसरी तरफ विद्यार्थी; एक तरफ लाठी, दूसरी तरफ पत्थर। यह है आज की स्थिति। यदि यह स्थिति बदलनी है तो, यूं भी पालकों की बात तुम लोग सुनोगे नहीं, फिर भी कम से कम इतना तो जाहिर कर दो कि हम यह शिक्षण नहीं लेंगे। इसके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है।

तुम कहोगे कि यह काम प्रधानमन्त्री का है, सरकार को करना चाहिए। यह सरकार की जिम्मेदारी है। और हम ? क्या हम गैरजिम्मेदार हैं ? जीवन तो हमारा है ना ? यह जीवन क्या हमारे माता-पिताओं का है ? क्या यह जीवन सरकार का है ? सरकार पाँच वर्ष के बाद रहेगी या नहीं, कौन जाने ? जीवन हमारा है और हमें अपना जीवन किसी के सिपुर्द नहीं करना है। वह स्वयं जीना है। यह आत्मप्रत्यय होना चाहिए तरुणों में।

छः

○

उपसंहार

० ० ०

क्रांतिवादी युवको, हम लोगों का उपदेशमत मानों, हमारी राय, स्वीकार मत करो। तुम्हें हमारा जीवन जीना नहीं है। पहली बात जो मुझे तुम लोगों से कहनी है, वह यह कि पिछली पीढ़ी की 'कार्बन कापी' मत बनो। मेरी पीढ़ी के और तुम्हारे पिताजी की पीढ़ी के लोगों की तरह बनने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम्हारा जीवन स्वतंत्र है, एक नया संसार बनाने का हौसला तुम में होना चाहिए। तुम्हारा यह हौसला तुम्हारे अपने ही परिश्रम से सिद्ध हो यह आशीर्वाद, यह शुभ-कामना मेरी पीढ़ी के लोगों को तुम्हारे चरणों में अर्पित करनी चाहिए।

मित्रो, जो यह कहता है कि पहले जो नहीं हुआ वह अब होगा नहीं, वह बूढ़ा है। आज तक जो न हुआ वह कल होकर रहेगा यह जो कहता है वह युवक है। वह बूढ़ा है जो यह कहता है कि अमीरी-गरीबी संसार में कभी मिटी नहीं, रामराज्य में भी अमीरी-गरीबी थी, सत्ययुग में भी थी, महाभारत और रामायण काल में भी थी, शिवाजी के समय में भी थी, इसलिए अमीरी-गरीबी कभी मिटनेवाली नहीं है।

मार्क्स ने क्या कहा ? उसने कहा कि आजतक अमीरी-गरीबी मिटी नहीं, इसलिए कल वह मिटनेवाली है। बिलकुल खत्म होनेवाली है। तभी वह क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। 'तलवार

के बिना आज तक क्रांति नहीं हुई इसलिए कल भी होनेवाली नहीं है', कहनेवाला बूढ़ा है।

इतिहास क्या है ?

स्वराज्य से पहले की बात है। मैं एक कालेज में गया था। वहाँ एक लड़के ने मुझसे प्रश्न किया—'आज तक क्या किसी को तलवार के बिना राज्य मिला है ?'

मैंने कहा—'नहीं'।

'फिर आप भाषण क्यों देते हैं ?'

'इसलिए देता हूँ कि मुझे लगता है कि वह मिलेगा।'

'ऐसा लगने का कारण क्या है ?'

'कारण यही कि तुम पैदा हुए हो। बीस वर्ष पहले तुम नहीं थे। गौतमबुद्ध हुआ, राम हुआ, कृष्ण हुआ, प्रताप हुआ, शिवाजी हुआ, पर तुम नहीं थे। तुम्हारा जन्म इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। इसलिए बुद्ध, ईसा, महावीर, शिवाजी, सीजर, गांधी, तिलक आदि के जमाने में जो हुआ नहीं, वह तुम्हारे जमाने में होनेवाला है। इतिहास में कल जो नहीं हुआ वह आज होनेवाला है। इसीलिए इतिहास लिखा जाता है।'

इतिहास क्या है ? शिवाजी पैदा हुआ, विवाह किया, मर गया। क्या संभाजी का भी यही इतिहास है ? क्या इतिहास ऐसा हो सकता है ? अखबार इस तरह से निकलने लगे तो क्या तुम पैसा देकर खरीदोगे ? कल जो नहीं हुआ वह आज होता है, इसलिए इतिहास लिखा जाता है। इतिहास बनाना तरुणाई के विरुद्ध है। यह तरुणाई की शान है।

इस तरुणाई की शान को एक कहानी के रूप में मैं बताया करता हूँ। मेरे जैसा एक बूढ़ा अपने नाती को लेकर बगीचे में घूमने निकला। अब बूढ़ों का एक लक्षण तुम्हें बताता हूँ। बूढ़ा

हमेशा शिकायत करता रहता है। शरीर में ताकत होती नहीं, वासनाएँ क्षीण नहीं हुई होतीं। वासनाएँ खूब हों और शरीर में दम नहीं हो तो आदमी संसार पर अक्सर झुंझलाता रहता है। सदा कुछ न कुछ शिकायत करता रहता है। तो वे दोनों जा रहे थे। रास्ते में सबसे पहले एक बड़ा इमली का पेड़ मिला। पहले ही से बूढ़ा खीझा हुआ था, सारे संसार से ऊबा हुआ, जीवन से थका हुआ था ही, तो बोला—'सारे लोग भगवान् की बड़ी तारीफ करते रहते हैं। लेकिन उसने यह संसार भी क्या बनाया? इमली का इतना तगड़ा पेड़ और इसके पत्ते देखो इतने छोटे और फल भी इतने छोटे! वाह, क्या 'सेन्स ऑफ प्रोपोर्शन' है? प्रमाणबद्धता, 'सिमेट्री' कुछ समझता नहीं शायद! अरे, खुद की अक्ल नहीं थी तो मेरे जैसे किसी सयाने से पूछ लेना था कि नहीं?···' इसी तरह, जो भी नजरों में आता उस पर कुछ न कुछ टिप्पणी करता जा रहा था। उसकी टिप्पणी का सिलसिला बराबर जारी था। आखिर गुलाब की क्यारी आयी। गुलाब के सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हुए थे। बूढ़ा बोला—'यह तो हद हो गयी! उस मनहूस ने गुलाब जैसे कोमल फूलों तक में कांटे लगा दिये हैं। यह उसकी कैसी अरसिकता है? यह तो कोमल बेल पर इतना मोटा कुम्हड़ा लटका देता है और इमली के भारी पेड़ पर इत्ता सा फल।'

उसके साथ जो छोटा बच्चा था, उसे तो हर चीज में नवीनता दिखाई देती थी। हर एक वस्तु देखकर वह बाग-बाग हो रहा था। उसे बड़ा आनन्द आ रहा था। टीका-टिप्पणी के लिए उसके मन में गुंजाइश ही नहीं थी। वह बोला—'नानाजी, एक काम करें। एक चक्कर और इस बाग का लगा आयें।'

नानाजी तैयार हो गये। दूसरा चक्कर शुरू हो गया। संजोग की बात कि बूढ़े के टक्कल पर इमली का एक फल फटाक से गिर पड़ा। तब नाती ने पूछा—'क्यों नानाजी, यह इमली कोहड़े के आकार की होती तो क्या होता?' बूढ़े ने पहले टीका की थी भगवान को 'सेन्स ऑफ प्रोपोर्शन' नहीं है, इतने बड़े पेड़ पर इतना छोटा फल और ऐसी नाजुक बेल पर इतना मोटा कुम्हड़ा बनाया! यदि इमली की फली कुम्हड़े के बराबर होती तो अब बूढ़े की कपालक्रिया हो गयी होती। बूढ़ा सोचने लगा और बोला कि 'हाँ कुछ समझदारी दिखती है उस भगवान् की रचना में।' नाती ने कहा—'बात यही है कि आपकी आँख में और मेरी आँख में बड़ा फर्क है। आपकी आँखें बूढ़ी हो गयी हैं, मेरी आँखें सावित हैं। भगवान् का दिया हुआ यह दिव्य चक्षु है। आप को गुलाब काँटों से घिरा दीखता है, पर मुझे धन्यता अनुभव हो रही है कि काँटों में गुलाब खिल रहा है।'

ऐसा यह संसार है। जिस देश में राष्ट्रीयता नहीं है, जिस देश के लोग लंबी आदत के कारण आलसी हैं, हताश हतबुद्धि हतवीर्य हो गये हैं, ऐसे देश में जनता के पुरुषार्थ से, जनता के पराक्रम द्वारा नये समाज का निर्माण करना है। प्रयत्नपूर्वक ऐसा समाज बनाना है और वह शक्य है, यह विश्वास जिसके अन्तःकरण में होगा वह तरुण है। तारुण्य सदा प्रयत्नशील रहता है. तारुण्य के शब्दकोष में पराभव शब्द ही नहीं है। असफलता है, पराभव नहीं। असफलता लज्जाजनक नहीं है। असफल तो अच्छे-अच्छे लोग हुए हैं। असफलता से मनुष्य की हानि नहीं हुई है। नाकामयाबी से पस्तहिम्मत होने की आवश्यकता नहीं है, पराभूत नहीं होना

है। असफलता से उत्साह बढ़ना चाहिए। असफलता से दुखी होने का कारण नहीं है। क्रांतिवादी युवको, ऐसा यौवन ईश्वरकृपा से तुम्हें प्राप्त हो।

एक शंका का समाधान पूछा गया है। यथामति स्पष्ट करने का प्रयत्न करता हूँ। मैंने कहा कि तारुण्य के शब्दकोश में पराभव नहीं है भले ही असफलता हो। इसका क्या अर्थ है?

उत्तर—इतिहास में और कुल क्रांति के तत्त्वज्ञान में और तंत्र में दो बातें बहुत महत्त्व की हैं। क्या सफलता का चिह्न यह माना जाय कि बहुसंख्यक लोगों को जो मान्य होगा वह सफल है? यह एक प्रश्न है। यह प्रश्न पहले मैं गांधीजी की भूमिका से पूछता था, अब क्रांतिकारी की भूमिका से पूछता हूँ। क्योंकि आज का क्रांतिकारी अब पूछने लगा है कि अमुक विचार या अमुक तत्त्वज्ञान बहुसंख्यक लोगों को मान्य नहीं हुआ इसलिए क्या वह उसका पराभव माना जाय? यह बहुत महत्त्व का प्रश्न है। उसका क्षेत्र चूँकि विशाल नहीं हुआ या जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसका प्रवेश नहीं हुआ इसलिए क्या उसे गलत माना जाय? यह प्रश्न है। मैं असफलता कहता हूँ, क्योंकि गांधीजी के कार्यक्रमों का अनुकरण लोगों ने किया, बड़ी संख्या में किया, तब भी इन कार्यक्रमों के पीछे क्रांति का जो विचार था, क्रांति की जो प्रेरणा थी उसे लोगों ने स्वीकार नहीं किया। इस अर्थ में गांधीजी असफल हुए, पर इसे मैं पराभव नहीं मानता।

बहुमत सही-गलत के निर्णय का साधन नहीं है। यह विचार अब राजनीति में भी करना होगा। 'नाथ पै' का बिल आया था कि मूलभूत अधिकार अबाधित रहें या उनमें परिवर्तन करना पार्लियामेंट के हाथ में हो? आपसे मुझे यह कहना है

कि यह प्रश्न तात्त्विक है, 'एकडेमिक' है। क्योंकि 'पार्लियामेंट केन डू एनिथिंग-एक्सेप्ट मेकिंग ए मैन ए वुमन एंड ए वुमन ए मैन।' पार्लियामेंट स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती और पुरुष को स्त्री नहीं बना सकती, पर इसके सिवाय पार्लियामेंट 'सुप्रीम' है, वह कुछ भी कर सकती है। यह वस्तुस्थिति है। पर ऐसा रहना चाहिए क्या, यह प्रश्न है।

आप कल्पना करें कि गोरे लोगों का दक्षिण अफ्रीका है, वहाँ की पार्लियामेंट यदि एकमत होकर यह प्रस्ताव पारित कर दे कि यहाँ काले लोगों का प्रवेश नहीं है, तो क्या यह उचित होगा ?

लोग कौन ?

मुझसे एक सवाल पूछा गया था कि लोगों में भगवान् होता है, पर ये लोग कौन हैं ? लोगों में भगवान् का अर्थ क्या है ? दूसरों से मेरी जो अपेक्षा होगी वह मेरा वास्तविक मत होता है। खुद मुझे जो चाहिए वह मेरा मत नहीं होता। असली मत क्या है ? मुझे यह जो लगता है कि दूसरा ऐसा रहे, वह मेरा असली मत होता है। यानी हम धोखाधड़ी करें तो हमें वह खलता नहीं, लेकिन दूसरा मुझे धोखा न दे यह हर कोई चाहता है और यही लोकमत है। यह मनुष्य की असली आत्मा है। दूसरों में जो हम देखना चाहते हैं वह उसका, सही भगवान् का स्वरूप है। वह उसका आत्मस्वरूप है। उपनिषद् में यह दूसरे अर्थ में कहा है—'य एष अक्षिणि पुरुषो दृश्यते'—दूसरे की आँख में जो मनुष्य है, यानी मेरी आँखों में दूसरा आदमी कैसा दिखे यह सही राय है, सही लोकमत है। काला मनुष्य स्कूल में न आये यह सही लोकमत नहीं है। यदि काला आदमी मुझे स्कूल में न आने दे तो ?

क्रांति और चारित्र्य

मेरे पास बिड़लाजी जैसी मोटरकार हो यह वासना है। लेकिन मेरे जितना सुख भंगी को मिले यह मेरी आत्मा की आवाज है। जो मुझसे कम सुखी होगा उसके साथ समानता हो। गांधीजी ने इसे 'कोड ऑफ इंडिविजुल कांडक्ट' कहा था।

'मेरी क्रांति की प्रक्रिया में चरित्र्य को स्थान है'। बंगाल में और अन्यत्र धनी कम्युनिस्ट हैं और समाजवादी अमीर हैं, तो गांधीजी ने जब यह कहा था कि 'अरे, ये समाजवादी कैसे? इनके पास तो संपत्ति है। इनके पास स्वामित्व है!' तो एक समाजवादी ने कहा था कि 'मैं संपत्ति छोड़ दूं तो उससे क्या होगा? उतने से तो कोई समाजवाद होगा नहीं। मैं संपत्ति छोड़ दूं और गौतम बुद्ध बन जाऊँ उतने से समाजवाद होनेवाला थोड़े ही है?' और जयप्रकाशजी ने भी लिखा ही था कि 'हमारे समाजवाद में—(वे जब समाजवादी थे तब की यह बात है)—व्यक्तिगत आचरण का स्थान नहीं है, उसका कोई महत्व नहीं है।' गांधीजी ने कहा— 'मेरा समाजवाद व्यक्तिगत आचरण से शुरू होता है।' उन्हें लोकात्मा को जागृत करना था। यह आत्मा है मनुष्य का। मुझसे ज्यादा जो दुखी है वह मेरी बराबरी पर आये, यह उनकी प्रक्रिया में वैयक्तिक चारित्र्य की प्रेरणा थी।

लोकतंत्र में 'पार्लियामेंटरी अब्सोल्युटिज्म' एक खतरा है। मतलब यह कि पार्लियामेंट का निर्णय अन्तिम और सम्यक् है। लेकिन पार्लियामेंट की सर्वानुमति भी यदि अन्यायमूलक हो तो वह भी प्रमाण नहीं है, यह गांधीजी का सत्याग्रहदर्शन है। और 'जॉन स्टुअर्ट मिल' का स्वतंत्रता का तत्त्वज्ञान भी यही है। सारा संसार एक तरफ हो जाय तो भी, एक व्यक्ति को भी

दबा देने का अधिकार संसार को नहीं है।

मालिकी का समावेश हमारे संविधान में दिये गये मूलभूत अधिकारों में है। वह अवांछित है। तो उसे निकाल देना जरूरी है। 'किरपाण' रखना भी मूलभूत अधिकारों में है। 'किरपाण' रखने का हक सिखों को है। ऐसी कुछ धाराएँ निकाल देने का अधिकार पार्लियामेंट को रहे यह कहना दूसरी बात है, लेकिन किसी भी प्रकार का मूलभूत अधिकार ही रद्द कर देने का अधिकार पार्लियामेंट को रहे— यह प्रतिपादन गलत है। स्वामित्व और संपत्ति का अधिकार सार्वत्रिक नहीं हो सकता। उसमें विषमता के बीज हैं। उसे मूलभूत अधिकारों में समाविष्ट करना ही अविवेक था।

एक प्रश्न यह भी है कि लोकमत कहां तक समीचीन या शुद्ध हो सकता है। मैज़िनी ने कहा था कि लोगों की आवाज़ ईश्वर की आवाज़ है। क्या यह सच है? तब तो पार्लियामेंट का निर्णय भगवान का निर्णय माना जायगा?

उत्तर—लोकमत दो तरह का होता है —औपचारिक और वास्तविक। पार्लियामेंट में जो लोकमत प्रकट होता है, वह हमेशा वास्तविक नहीं होता। तिसपर भी ब्रिटिश पार्लियामेंट के बारे में कहा गया है कि वह सिर्फ पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती, और सब कुछ करने की सामर्थ्य उसमें है। यह संवैधानिक तथ्य है। लेकिन इसमें 'पार्लियामेंटरी अॅब्सोल्यूटिज्म' (पार्लियामेंटरी तानाशाही) के बीज छिपे हैं। कल कोई प्रतिनिधि सभा सर्वसम्मति से यह निर्णय करे कि काले लोगों को गोरों में नहीं बैठना चाहिए या अछूतों को ब्राह्मणों को नहीं छूना चाहिए, तो क्या वह मत शुद्ध और सर्वहितकारी माना जायगा? प्रातिनिधिक या प्रत्यक्ष लोकतंत्र में भी औप-

चारिक लोकमत की मर्यादा है।

वास्तविक लोकमत की क्या पहचान है ? एक मोटी कसौटी बतला सकता हूँ। ब्राह्मण यह तो चाहता है कि अस्पृश्य उसे न छुये, मगर वह हरगिज नहीं चाहेगा कि उसे कोई अस्पृश्य माने। कालों को गोरा आदमी दूर रखना चाहता है, लेकिन गोरा आदमी यह कभी नहीं चाहेगा कि उससे कोई परहेज करे। अमीर गरीब को हीन मानता है, परन्तु यह कभी नहीं चाहेगा कि उसे कोई अपने से नीचा माने। मतलब यह कि हम अपने लिए जो अपेक्षा दूसरों से करते हैं वही वास्तविक हमारी आत्मा की आवाज़ है। यही हर एक के भीतर बैठे हुए परमात्मा का संकेत है। यही लोकात्मा का कौल है। गांधी की कई बातें बहुसंख्यक नागरिकों को पसंद नहीं थीं। लेकिन उनकी अन्तरात्मा उन्हें नकार नहीं सकती थी। मनुष्यों के संबंधों में इसीका नाम है भगवान का अधिष्ठान।

□□□

क्रांतिवादी तरुणो, तुम हमारे उपदेश मत सुनो। हमारे विचार मत मानो। तुम्हें हमारा जीवन नहीं जीना है। पिछली पीढ़ी की 'कार्बन कापी' तुम्हें नहीं बनना है। इसके लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम्हारा जीवन स्वतंत्र है।

मित्रो, आज हम जिस संसार में जी रहे हैं वह मनुष्य के जीने लायक नहीं है। हम पिछली पीढ़ी के लोग जीये, क्योंकि हममें जीवन नहीं था, पुरुषार्थ की कमी थी। अब एक ही आकांक्षा है कि जिस संसार में मैं मरूंगा उस संसार में तुम्हें जीना न पड़े। इस लिए अब तुम निर्णय करो, प्रतिज्ञा करो कि 'ऐसे संसार में हम नहीं जीयेंगे।'

एक नया संसार निर्माण करने का हौसला तुम में होना चाहिए। वह हौसला तुम्हारे ही पराक्रम से पूरा हो, यही आशीर्वाद है, यही शुभकामना है।

दादा धर्माधिकारी